चुन्नीलालजैनग्रंथमाला

८

कवि श्रीजिनदेवविरचित-

मकरध्वजपराजय ।

पं० गजाधरलालजी द्वारा अनुवादित

जिसको
गांधी हरिभाईदेवकरण एंड संस द्वारा संरक्षित
भारतीयजैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्थाके
महामंत्री—पन्नालाल बाकलीवालने
झालरापाटणनिवासी विनोदीराम बालचंद्रजीकी द्रव्यसे
उनके स्वर्गीय सुपुत्र शेठ दीपचंद्रजीके स्मरणार्थ

कलकत्ताके विश्वकोष प्रेसमें,
राखालचंद्रमित्रके प्रबंधसे
छपाकर प्रसिद्ध किया ।

४९९. स्वर्गीय श्रीमान् सेठ दीपचंदजी साहब।

जन्म विक्रम सं. १९२३ भाद्रशुक्का १४ रविवार।

अवसान सं. १९७३ चैत्रशुक्का १४।

चुन्नीलाल जैनग्रंथमाला

८

मकरध्वजपराजय।

(हिंदीभावानुवाद)

पहिला परिच्छेद।

जिनके इंद्रसरीखे सेवक चतुराननसे वंदक हैं
पापरूप वनको कुठार जो मोहकर्म-तमभंजक हैं।
ऐसे सकल सौख्यके दायक श्रीजिनवरपदपद्मोंको
मन वच तनसे करूं वंदना सदा शुद्धिके सद्मोंको ॥१॥

ऊंच नीच सब प्रकारके मनुष्योंसे मंडित महामनोहर एक संसार नामका विशाल नगर है। उसके रक्षणकर्ता अनुपम शक्तिके धारक महाराज मकरध्वज हैं जोकि

---

१ यदमलपदपद्मं श्रीजिनेशस्य नित्यं
शतमखशतसेव्यं पद्मगर्भादिवंद्यं ।
दुरितवनकुठारं ध्वस्तमोहांधकारं
तदखिलसुखहेतुं निःप्रकारैर्नमामि ॥ १ ॥

समस्त देव देवेंद्र, नर नरेंद्र, नाग नागेंद्र, आदिके वश करनेवाले होनेके कारण त्रैलोक्य विजयी हैं और अतिशय सुंदर, महापराक्रमी, दानी, भोगी, रति और प्रीति दो रानियोंसे मंडित, मोहरूपी प्रधान मंत्रीसे युक्त हो, सुखपूर्वक एकछत्र राज्यका पालन करते हैं। एक दिन शल्य कुज्ञान और दुर्लेश्याओंसे मंडित, कर्मदोष आस्रव विषय अभिमान मद प्रमाद निंदितपरिणाम असंयम और व्यसन आदि वलवान योधाओंसे भूषित, अनेक नर नरेंद्रोंसे सेवित महाराज मकरध्वज सभाभवनमें राजसिंहासन पर विराजमान थे। उसदिन विशेष राजकाज न होनेसे उन्होंने अपने पासमें वैठे हुये प्रधान मंत्री मोहसे पूछा-

मंत्री मोह! क्या हमारे राज्य (तीनोंलोक) में कोई अपूर्व घटना होनेका समाचार आया है? उत्तरमें मोहने कहा-

हां महाराज! अवश्य आया है परंतु यदि आप उसे एकांतमें सुननेका कष्ट उठावें तो बहुत अच्छा हो। क्योंकि-

नरपतिका लघुकार्य भी, मध्य सभाके आय।[1]
कहना अनुचित विज्ञको, यह सुरगुरु आम्नाय
छै[2] कानोंमें पडा मंत्र जल्दी भिदता है
चार कानके वीच रहा वह थिर रहता है।
इसीलिये है विज्ञजनोंको यह शुभ शिक्षा
छै कानोंसे करैं मंत्रकी वे नित रक्षा॥

---

१ अपि स्वल्पतरं कार्यं यद्भवेत् पृथिवीपतेः॥
तन्न वाच्यं सभामध्ये प्रोवाचेदं वृहस्पतिः॥
२ षट्कर्णो भिद्यते मंत्रश्चतुःकर्णः स्थिरी भवेत्॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन षट्कर्णो रक्ष्य एव सः॥

मोहकी यह सयुक्तिक बात सुन मकरध्वज एकांतमें चलनेके लिये तयार हो गये और वहां पहुंचकर दोनोंमें जो बात चीत हुई वह यह है–

मोह–स्वामिन्! दूत संज्वलनने यह विज्ञप्ति (रिपोर्ट) भेजी है आप इसे लें और पढें

मकरध्वज–(विज्ञप्ति पढ आतुर हो) मोह! जन्मसे लेकर आजतक मैंने कभी ऐसी अपूर्व घटना नहिं सुनी इसलिये यह मुझै सर्वथा मिथ्या जान पडती है कि जब मैं तीनों लोकका विजय कर चुका तब उससे बाह्य कोई जिनराज नामका राजा मौजूद हैं और वह मेरे द्वारा आविजित स्वाधीन है? नहीं! यह कभी संभव नहीं हो सक्ता।

मोह–नहिं कृपानाथ! यह बात सर्वथा सत्य है। संज्वलन कभी झूठ नहिं लिख सकता। वह दूतकर्ममें बडा ही चतुर है। उसे अच्छी तरह मालूम है कि "राजा समस्त देवोंका समुदायस्वरूप होता है इसलिये उसे उत्कृष्ट देव माना जाता है और उसके सामने कभी झूठ नहिं बोला जाता। तथा उत्कृष्ट देव एवं राजामें यह विशेषता भी होती है कि देव तो दूसरे भवमें अपराधका फल देता है और राजा इसी जन्ममें शीघ्र ही फल प्रदान करता है।" अस्तु! यदि आप संज्वलनकी बातपर विश्वास न भी करैं! तो क्या! आप जिनराजको सर्वथा भूल गये? महाराज! यह वही जिनराज तो है जो आपके संसाररूपी नगरमें रहता था। सदा दुर्गतिरूपी वेश्याके यहां पडा रहता। निरंतर चोरी कर्म करता और कालरूपी विकराल कोतवालसे

बांधा मारा जाता था। एक दिन उसे दुर्गतिरूपी वेश्यासे वैराग्य होगया। वह आपके शास्त्ररूपी खजानेमें घुसा, वहांसे तीनों लोकमें उत्तम अत्यंत हितकारी तीन रत्न लिये, और उसी समय घर स्त्री पुत्र आदिसे सर्वथा विमुख हो, उपशमरूपी अश्वपर सवारी करके विषय और इंद्रियरूपी दुर्जय भटोंसे रोके जानेपर भी न रुका एवं शीघ्र ही चारित्ररूपी नगरमें प्रवेश करगया। कृपानाथ! चारित्रनगरमें इस समय पंचमहाव्रतरूपी पांच भट रहते हैं। जब उन्होंने देखा कि जिनराज अमूल्य रत्नोंसे युक्त और राज्यके सर्वथा योग्य है तो उन्होंने उसे तप राज्यप्रदान कर दिया इसलिये वह आजकल शत्रुओंके अगम्य चारित्रपुरमें निष्कंटक रूपसे राज्य कररहा है। उसके विषयमें यह भी सुननेमें आया है कि उसका मुक्ति कन्याके साथ विवाह होनेवाला है इसलिये समस्त नगरमें बडे ठाटवाटसे उत्सव किया जा रहा है।

मकरध्वज—हां! ऐसा!! अच्छा मोह!!! जरा यह तो वतलाओ, मोक्षपुरमें जिस कन्याके साथ जिनराजका विवाह होनेवाला है वह किसकी कन्या और कैसी है?

मोह—नरनाथ! कन्याके विषयमें क्या पूछना है? कमनीयरूपकी धारक वह कन्या राजा सिद्धसेनकी तो पुत्री है। उसका श्रीमुख, परिपूर्ण षोडश कलाके धारक चंद्रमाके समान कमनीय अखंडज्ञानकी ज्योतिसे देदीप्यमान है, नेत्र—फूले हुये चंचल नीलकमलोंसे ईर्षा करनेवाले विशाल अनंतदर्शनके धारक कटाक्ष संयुक्त हैं, अधरपल्लव अमृत रससे पूरित अत्यंत मनोहर विंवाफलके समान अनंतसुखदायी हैं, शरीर नवीन उत्तम चंपाके

फूलोंकी मनोहर मालाके समान सुवर्णसदृश कांतियुक्त अंनत गुणोंका धारक है, मध्यभाग अविनाशी यौवनसे प्रस्फुटित कठिन कुंचकुंभके भारसे नम्र कृश और अनंतवीर्यत्वसे भूषित है एवं नाभि जघन जानु (घुटने) गुल्फ और चरण आदि संपूर्ण अंग उपांग अनुपम नित्यगुणोंसे संयुक्त लावण्यसे परिपूरित शुभ लक्षणोंसे शोभित अवर्णनीय हैं। इसके सिवा महाराज! जिसरूपसे जिनराज और मुक्ति कन्याका आपसमें विवाह हो सके उसरूपसे सुचतुर दूती दया, भरपूर प्रयत्न कर रही है।

मकरध्वज—(मुक्तिवनिताके सौंदर्यका वर्णन सुन लालसा युक्त हो) हां! यह बात! तब तो अवश्य ही उस जिनराजको यमराजका अतिथि बना स्वयं मनोहारिणी मुक्तिकन्याका विवाह कर लेना चाहिये यदि मैं ऐसा न करूं तो मुझे सहस्रबार धिक्कार है अच्छा! सैन्यको युद्धकी तयारी करनेका शीघ्र ही हुक्म दो। अथवा (पंच बाणको हाथमें उठाकर) सैन्यकी क्या जरूरत है मेरे तीक्ष्ण नोकीले बाणोंकी वर्षा ही उसका काम तमाम कर देगी।

मोह—(संग्रामके लिये उत्कंठित मकरध्वजको देखकर) नरनाथ! अपने सैन्यकी पूर्णरूपसे जांच और उसै शत्रुके पराजयकेलिये समर्थ न देखकर सहसा युद्धकेलिये प्रवृत्त होजाना विद्वानोंका काम नहीं क्योंकि जो मनुष्य अपने सैन्यकी सामर्थ्य न जानकर अचानक ही संग्रामकेलिये प्रवृत्त हो जाते हैं वे विना समझे अग्निमें पड़े हुये पतंगाके समान शत्रुके सम्मुख पड़ते ही तत्काल नष्ट हो जाते हैं। देखो, जिसप्रकार तेजस्वी भी सूर्य विना किरणोंके शोभित नहिं होता और न जगतमें अपना प्रकाश ही कर सकता

है उसीप्रकार विना भृत्योंके राजा भी प्रजाको अनुग्रह नहिं कर सकता। विना भृत्योंके राजा और विना राजाके भृत्य कार्यकारी नहिं हो सकते इसलिये स्वामी और भृत्योंका आपसमें घनिष्ट संबंध होनेपर ही राजा और भृत्य व्यवहार होता है अन्यथा नहीं। यदि राजा संतुष्ट भी होजाय तो केवल भृत्योंको धन ही प्रदान कर सकता है किंतु भृत्य जब कि वे राजासे जरा भी सम्मानित हो जाते हैं तो उसकेलिये अपनी सर्वस्व संपत्ति प्राण भी न्योछावर कर देते हैं। इसलिये यह वात अच्छीतरह जानकर कि विना भृत्योंके राजाकी शोभा नहीं, राजाको चाहिये कि वह चतुर कुलीन शूर वीर समर्थ भक्त और कुल परंपरासे आये हुये भृत्योंको अवश्य साथमें रक्खे।

महाराज! एक व्यक्तिका नाम वल-सेना नहीं। अनेक व्यक्तियोंके समुदायको वल कहते हैं। लोंकमें इस वातको सभी जानते हैं कि एक तृणका नाम रज्जु नहीं किंतु तृणसमूहको रज्जु कहते हैं और उससे हाथी सरीखा वलवान पशु तक भी वांध लिया जाता है इसलिये आप अकेले कुछ नहिं कर सकते जिस समय आप सैन्यके साथ जांयगे उसीसमय शत्रुका विजय होगा।

मकरध्वजने मंत्री मोहके उपर्युक्त नीति वचन सुन शांत हो धनुषको रख दिया और "यदि ऐसी ही वात है तो तुम सेनाको तैयारकर शीघ्र आओ। देखो! किसी प्रकारका विलंव न हो।" ऐसा कहकर मोहको सैन्य तैयार करनेकेलिये भेज दिया।

मंत्री मोह आखोंके ओझल हुआ ही था कि महाराज मकरध्वजको गहरी चिंताने आ घेरा। वे मुक्ति ललनाके लावण्यरस

में अतिलालायित हो गरम २ श्वास खींचते हुये कहने लगे-हा !!

मंदमाते गजकुंभस्थलसम विपुल और कुंकुमसे लिप्त
मुक्तिरमाके कुचयुग ऊपर मुख रख रतिसे हो संतृप्त।
भुजपंजरसे वेष्टित हो जब शयन करूंगा मैं सुखसे
ऐसा रजनी अंतकाल वह कब होगा मम शुभविधिसे ॥

जब महाराणी रतिने चंचलचित्तके धारक, शोकरूपी भयंकर ज्वरसे पीडित, क्षीणशरीरी, महाराज मकरध्वजको देखा वे बड़ी दुःखित हुईं और अपनी सपत्नी किंतु प्रियसखी प्रीतिसे इसप्रकार कहने लगीं–

"प्रिय सखी प्रीति !! क्या तुम्हें मालूम है हमारे जीवनाधार महाराज आज अत्यंत चंचल और गहन चिंतासे जकड़े हुये क्यों दीख पडते हैं !" उत्तरमें प्रीतिने कहा–

नहीं, प्रियसखी ! मैं निश्चयसे नहिं कहसकती कि प्राणनाथकी ऐसी अवस्था कैसे होगई ! शायद कोई राजकाज आ अटका होगा हमें उसके जाननेसे क्या लाभ ?" प्रीतिकी इसप्रकार उपेक्षा देख रतिसे न रहा गया वह बोली–

नहीं नहीं प्यारी सखी ! प्रीति ! तुम्हारा ऐसा कहना सर्वथा भूल है। याद रक्खो ! जीवनसर्वस्व स्वामीके विषयमें इसप्रकारकी उपेक्षा करना पतिधर्ममें बट्टा लगाना है।

प्रीतिने रतिके युक्त वचनसे मनमें कुछ लज्जित हो कहा-प्यारी सखि रति ! यदि ऐसा ही है तो तुम्हीं प्राणनाथसे यह बात पूछो शीघ्र असली हालका पता लग जायगा।

---

१ मत्तेभकुंभपरिणाहिनि कुंकुमार्द्रे तस्याः पयोधरयुगे रतिखेदखिन्नः ।
वक्त्रं निधाय भुजपंजरमध्यवर्ती शेष्ये कदा क्षणमहं क्षणदावसाने ॥१६॥

इसप्रकार सखी प्रीतिसे सलाह कर महारानी रतिने वैसा ही किया। वह एक दिन रात्रिके समय जबकि महाराज अपने शयनागारमें मनोहर सेजपर शयन कर रहे थे, धीरेसे उनके पास पहुंची और जिसप्रकार पर्वतनंदिनी-पार्वती महादेवका आलिंगन करती है, इंद्राणी इंद्रका, गंगा समुद्रका, सावित्री ब्रह्माका, लक्ष्मी श्रीकृष्णका, रोहिणी चंद्रमाका और देवी पद्मावती नागेंद्रका आलिंगन करती है, महाराजके शरीरसे लिपट गई और अनुनय विनय हो चुकनेके बाद दोनों में इसप्रकार बात चीत होने लगी-

रति-मेरे प्राणाधार जीवनसर्वस्व! आपकी यह क्या दशा होगई है? जिससे न आपको आहार अच्छा लगता है न रात्रिमें भरपूर निद्रा आती है और न राज्यकी ही कुछ चिंता रही है! कृपाकर बताइये आपकी इस शीर्ण अवस्थाका प्रधान कारण क्या है? प्राणेश! यदि कोई सामान्य मनुष्य किसी बातकी चिंता करता तो युक्त भी होता परंतु आप भी चिंताकी लपेटमें लिपटे हुये व्यथित हो रहे हैं यह बड़ा आश्चर्य है क्योंकि संसारमें न तो ऐसा कोई जीव है जिसे आपने जीत न लिया हो, न कोई ऐसी स्त्री है जिसका आपने रसास्वादन न किया हो, न कोई ऐसा मनुष्य ही दृष्टि गोचर होता है जो आपकी सेवासे बाह्य हो-आपकी सेवा न करना चाहता हो! फिर न मालूम आपकी इस अचिंत्य चिंताका कारण क्या है?

मकरध्वज-प्रिये! तुम्हें इसबातके पूछनेसे क्या लाभ? क्यों व्यर्थ तुम मेरी चिंताका कारण जाननेकेलिये आग्रह करती हो? तुम निश्चय समझो जो चिंता मेरे हृदयमें अटलरूपसे समागई है वह विना पूर्ण हुये नहीं निकल सक्ती और उसका तुमसे पूर्ण होना संभव नहीं।

रति–नाथ! यह सच है तथापि मेरे हृदयकी शल्य निवारणार्थ क्यों कर उसे प्रगट करैं।

मकरध्वज–प्रिये! अच्छा! यदि तुम्हारा ऐसा ही आग्रह है तो सुनो जिसदिन दूत संज्वलनकी विज्ञप्ति आई थी उसदिन मैंने मुक्ति नामकी अंगनाका हृदयहारी रूप और लावण्यका वर्णन सुना था। बस! तभीसे मेरे हृदयमें चिंता व्याप्त होगई है और उससे मेरे शरीरकी यह शीर्ण अवस्था होगई है। अब मुझे नहिं सूझता कि मैं क्या करूं? कैसे उस मुक्ति ललनाके कमनीय रूप और लावण्यका साक्षात्कार करूं?

रति–कृपानाथ! यदि यही बात है तो आपने अपना शरीर व्यर्थ ही सुखा डाला। भला! जब आपके मोह सरीखा समस्तकलाओंमें निष्णात मंत्री मौजूद है तब आपने अपने हृदयका भाव क्यों गोप्य रक्खा? आप निश्चय समझिये! मंत्री मोहकेलिये यह बात असाध्य नहीं, वह सुनते ही आपकी इष्ट कामना पूरी करैगा। यदि आप यह कहैं कि यह गुप्त भाव मैं मंत्रीसे कैसे कहूं? सो भी अयुक्त है क्योंकि–

जो जननीसे गुप्त वह, कथन सचिवके योग्य।
मंत्री विश्वासी स्वजन, होता अन्य अयोग्य॥

नाथ! जो बात अत्यंत प्यारी माताको भी कहने योग्य न हो वह अपने मंत्रीसे कहना चाहिये क्योंकि मंत्रीको छोड़कर अन्य कौन विश्वासका पात्र हो सकता है?

---

१ जनन्यां यच्च नाख्येयं कार्यं तत्स्वजने जने।
सचिवे कथनीयं स्यात् कोऽन्यो विश्रंभभाजनः॥ २०॥

मकरध्वज--प्रिये ! तुम्हारा कहना सर्वथा युक्त है। मोहको भी यह बात अज्ञात नहीं-वह भी खुलासारूपसे जानता है। मैंने उसै समस्त सेनाके तयार करनेकेलिये आज्ञा दी है और तुमसे भी यह आग्रह है कि जब तक मोह, समस्त सेनाको तयार कर न आ पावे उसके पहिले ही तुम मुक्तिकन्याके पास जाओ और जिसरूपसे वह मुझे अपना जीवनसर्वस्व बनावै उसरूपसे पूर्ण उद्योग करो क्योंकि--

लक्ष्मी उद्योगी पुरुषको ही प्राप्त होती है आलसियोंको नहीं किंतु जो पुरुष आलसी होकर अपने भाग्यका ही भरोसा रखते हैं वे पुरुष निंदित हैं, कायर हैं। इसलिये विद्वानोंको चाहिये कि वे भाग्यकी कुछ भी पर्वाह न कर आत्माकी समस्त शक्ति व्ययकर पुरुषार्थ करैं। यदि पुरुषार्थसे कार्य सिद्ध न हो तब भी कोई दोष नहीं। क्योंकि देखो--

जिसके रथमें केवल एक तो चक्र है सात घोडे हैं कंटकाकीर्ण मार्ग है और एक चरणरहित अनूरु सारथि है तथापि वह सूर्य प्रतिदिन अपार आकाशके मार्गको तय करता है। इसलिये यह बात स्पष्ट रूपसे जान पडती है कि महापुरुष पराक्रमसे हीं कार्यकी सिद्धि करते हैं दैवके भरोसे नहिं बैठे रहते। अंतमें तुमसे मेरा यही कहना है कि तुमने मेरे हृदयका असली हाल जाननेके लिये अत्यंत आग्रह किया था इसलिये मैंने बतला दिया यदि इस मेरे कच्चे हालको जानकर भी तुम मेरी पीडाके दूर करनेका उपाय न करोगीं तो याद रक्खो तुम पतिव्रता नहिं कही जा सकतीं-तुम्हारे पतिव्रत धर्ममें बट्टा लग जायगा।

रति–प्राणनाथ ! यह बात ठीक है। परंतु क्या यह आपको उचित है ! क्या कोई अपनी प्रियाको दूती बनाकर अन्य स्त्रीके पास भेजता है-क्या दूतीका कार्य करनेवाली भार्या विद्वानोंके प्रशंसायोग्य बन सकती है! कभी नहीं !!

मकरध्वज–सुंदरी ! जो तुम कहती हो वह सर्वथा युक्त है और ऐसा ही होना चाहिये। परंतु यह कार्य ऐसा है कि विना तुम्हारी सहायताके सिद्ध नहिं हो सकता क्योंकि स्त्रियोंको स्त्रियां ही विश्वास करा सकती हैं। देखो–

देखी मृगकी मृगमें प्रीती रमणीकी रमणीके संग
अश्व प्रीति अश्वहिमें करता मूरख जन मूरखके संग।
जो होते हैं ज्ञानवान नर उनके प्रीतिपात्र ज्ञानी
इसीलिये सम शील व्यसनके पुरुषोंमें प्रीती मानी॥

अर्थात्–मृग मृगोंके साथ समागम अच्छा समझते हैं स्त्रियां स्त्रियोंके साथ, अश्व अश्वोंके साथ, मूर्ख मूर्खोंके साथ और विद्वान् विद्वानोंके साथ सहवास करना उत्तम मानते हैं ठीक भी है जिनका स्वभाव और व्यसन (विपत्ति) समान होते हैं उन्हींकी आपसमें मित्रता हो सकती है।

रति–(मनमें कुछ चिंतित होकर) स्वामिन् ! आपका कहना सर्वथा ठीक है, मैंने माना। परंतु यदि–

शार्दूलविक्रीडित।

काकोंमें शुचिता सुसत्यगुणता हो ज्वारियोंमें यदा

---

१ मृगैर्मृगाः संगमनुव्रजंति स्त्रियोऽङ्गनाभिस्तुरगास्तुरंगैः।
मूर्खाश्च मूर्खैः सुधियः सुधीभिः समानशीलव्यसनेषु सख्यं॥ २४॥

२ काके शौचं द्यतकारेषु सत्यं सर्पे क्षांतिः स्त्रीषु कामोपशांतिः।
क्लीबे धैर्यं मद्यपे तत्त्वचिंता यद्यैवं स्यात्तद्भवेत्सिद्धिरामा॥ २५॥

सर्पोंमें समता अनंगशमता स्त्रीवर्गमें सर्वदा ।
क्लीवोंमें धृतिता सुतत्त्वरुचिता हो मद्यपोंमें, तदा
हो सच्ची वह प्राप्त मुक्तिरमणी अत्यंत कल्याणदा ॥

अर्थात् जिसप्रकार काकोंमें पवित्रता, जूआ खेलनेवालोंमें सत्यता, सर्पोंमें क्षमा, स्त्रियोंमें कामकी उपशांति, नपुंसकोंमें (हीजडों) में धीरता और मद्य पीनेवालोंमें तत्त्वचिंता आदिका होना असंभव है उसीप्रकार आपको मुक्तिरमणीका मिलना भी असंभव है । और भी नाथ ! इसके सिवा यह वात है—

दोहा ।

रामा इंद्रिय शस्त्र सुत, अरु रागादि विकल्प ।
यदि हैं नरके तो वृथा मुक्तिरमासंकल्प ॥

अर्थात्—जो पुरुष स्त्री शस्त्र इंद्रियां पुत्र आदि और राग द्वेष आदिसे कलंकित हैं, सदा दूसरोंका अपकार उपकार किया करते हैं मुक्तिरमा उनके पास भी नहीं फटकती । इसलिये कृपानाथ ! आपका आर्तध्यान करना व्यर्थ है-मुक्तिरमाके लिये जो आप प्रतिसमय आर्तध्यान करते रहते हैं उससे आपको कोई फल नहिं प्राप्त हो सकता क्योंकि शास्त्रमें कहा है—

"मनुष्योंको व्यर्थ आर्तध्यान न करना चाहिये क्योंकि आर्तध्यानसे उन्हें तिर्यंच योनिका वंध होता है । इसी आर्तध्यानके कारण हेमसेन नामका मुनि मरकर खरबूजामें कीटकपर्यायका धारक तिर्यंच हुआ था ।

मकरध्वज—प्रिये ! सो कैसे ?

---

१ ये स्त्रीशस्त्राक्षपुत्राद्यै रागाद्यैश्च कलंकिताः ।
निग्रहानुग्रहपराः सा सिद्धिस्तान्न गच्छति ॥ २७ ॥

रति-सुनिये कृपानाथ! मैं सुनाती हूं--

इसी पृथ्वीपर एक चंपा नामकी नगरी है जो नाना प्रकारके उत्सवोंसे व्याप्त, उत्तमोत्तम जिनेंद्र भगवानके मंदिरोंसे मंडित, उत्तम धर्मके आचरण करनेवाले श्रावकोंसे परिपूर्ण, चारोंओर सघन और हरी भरी वृक्षराजिसे भूषित, समस्त भूमिखंडोंपर सानंद विहार करती हुई उत्तमोत्तम रमणियोंसे रमणीक, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों वर्णोंके गुणोंमें प्रेम करनेवाले शूद्रजनोंसे युक्त, अनेक देशोंसे आये हुये विदेशी छात्रों और निर्मल ज्ञानके धारक सैकडों उपाध्यायोंसे अलंकृत एवं अनेक पुरवासी रमणियोंके मुखरूपी चंद्रमाकी मनोहर चांदनीसे देदीप्यमान वसुधारूपी मनोहर मालाको धारण करनेवाली है। उसी चंपापुरीमें एक हेमसेन नामके मुनि किसी जिनालयमें उग्र तपश्चरण करते हुये निवास करते थे। कुछ समयके वाद जब कि उनका मरणकाल समीप रह गया तब पुरवासी श्रावकोंने जिनालयमें आकर अनेक उत्तमोत्तम पुष्प और फलोंसे भगवान जिनेंद्रकी आराधना पूजा की। पूजाके बाद प्रतिमाके सामने पका हुआ मनोहर मिष्ट सुगंधिसे व्याप्त एक खरबूजे का फल चढाया। फलकी मनोहर सुगंधिसे मुनिराज हेमसेनका चित्त चलित होगया और 'वह मुझे कैसे प्राप्त हो' इस तीव्र आर्तध्यानसे मरकर वे उसी खरबूजेमें जाकर कृमि हुये।

उसी जिनालयमें अवधिज्ञानके धारक एक मुनिराज चंद्रसेन भी विराजमान थे। मुनि हेमसेनका शरीर संस्कार पूर्णकर दूसरे दिन जब श्रावक जिनालयमें आये तो वे मुनिराज चंद्रसेनसे विनम्र हो यह पूछने लगे--

महाराज ! मुनिराज हेमसेनने मरणपर्यंत इस चैत्यालयमें उग्र तप किया था। कृपाकर कहिये तपके प्रभावसे वे इस समय किस गतिमें गये हैं ?

मुनिराज त्रिकालज्ञ थे, श्रावकोंके प्रश्नसे उन्होंने अपने दिव्यज्ञान (अवधिज्ञान) की ओर उपयोग लगाया और वे ऊर्ध्वलोक एवं पाताललोकमें उनका पता लगाने लगे। जब वहां कहीं भी पता न लगा तो उन्हें बडा आश्चर्य हुआ। उन्होंने मध्यलोकमें अपना उपयोग लगाया और यह स्पष्टरूपसे जानकर कि "मुनि हेमसेन जिनेंद्रभगवानके चरणोंमें चढाये गये खरबूजेकी प्राप्तिके आर्तध्यानी होकर मरे हैं इसलिये वे उसीमें आकर कीडा हुये हैं" श्रावकोंसे कह दिया। मुनि चंद्रसेनके वचनोंसे श्रावकोंको बडा आश्चर्य हुआ। उन्होंने शीघ्र ही खरबूजेके टुकडे किये और उसमें कीडेको देखकर पुनः मुनिराजसे पूछा-

दयासागर ! मुनि हेमसेनने तो उग्र तप किया था फिर ऐसा गतिबंध उन्हें कैसे हुआ ? उत्तरमें मुनि चंद्रसेनने कहा-

यह बात ठीक है-अवश्य मुनि हेमसेनने उग्र तप तपा था परंतु ध्यानका फल प्रधान होता है। उन्होंने आर्तध्यान किया था इसीलिये उन्हें खरबूजेमें कृमि होना पडा। क्योंकि-

आर्तध्यानसे दुख तिर्यंच। रौद्रध्यानसे नरक प्रपंच।
धर्म्यध्यानसे मिलता स्वर्ग। शुक्लध्यान देता अपवर्ग॥

अर्थात्-आर्तध्यानसे तिर्यग्गति, रौद्रध्यानसे नरक गति,

---

१ आर्ते च तिर्यग्गतिराहुराद्या रौद्रे गतिः स्यात्खलु नारकी च॥
धर्म्ये भवेद् देवगतिर्नराणां ध्याने च जन्मक्षयमाशु शुक्ले॥ २८॥

धर्मध्यानसे देवगति और शुक्लध्यानसे निराकुलतामय सुखस्वरूप मुक्ति प्राप्त होती है।

मुनिराजके मुखसे आर्त रौद्र ध्यानोंका फल सुन श्रावकोंको उनके स्वरूप जाननेकी उत्कंठा हुई इसलिये वे मुनिराजसे कहने लगे—

भगवन्! आर्तध्यान, रौद्रध्यान धर्म्य ध्यान और शुक्ल-ध्यान क्या पदार्थ हैं? कैसा उनका स्वरूप है कृपाकर खुला-सारूपसे वतलाइये? उत्तरमें मुनिराज चारों ध्यानोंका इसप्रकार वर्णन करने लगे—

वस्त्र, सेज, रमणी, हीरादिक रत्न, राज्य उपभोगोंकी
उत्तम पुष्प, ग्रंथ, शुभभूषण पिच्छिकादि उपकरणोंकी।
वाहन आसनादिकी भी जो लोलुपतासे अज्ञानी
सदाकाल अभिलाषा करता वह होता आर्तध्यानी॥[1]

अर्थात्—जो पुरुष वस्त्र सेज स्त्री रत्न राज्य भोगोपभोग उत्तम पुष्प उत्तम गंध शुभभूषण पिच्छिका आदि उपकरण घोडा वग्घी रथ आदि सवारी और आसन आदि पदार्थोंकी सदा अभिलाषा करता है-सदा यही विचार करता रहता है कि उत्तम वस्त्र सेज स्त्री आदि पदार्थ मुझे कैसे प्राप्त हों उस पुरुष-के आर्त-पीडासे होनेवाला ध्यान अर्थात् आर्तध्यान होता है।

अन्य प्राणियोंके ज्वालनमें मारन छेदन बांधनमें[2]
होता जिसके हर्ष बहुत ही तथा उन्हींके ताड़नमें।
तथा व्यसन भी अघसंचयका, सदा नही अनुकंपालेश
जिसके वह नर रुद्रध्यानका धारी, यह मुनिजन उपदेश।

---

१ वसनशयनयोषिद्रत्नराज्योपभोगप्रवरकुसुमगंधानेकसद्भूषणानि।
सदुपकरणमन्यद्वाहनान्यासनानि सततमिति य इच्छेद् ध्यानमार्तं तदुक्तं॥२९॥
२ दहनहननवंधच्छेदनैस्ताडनैश्च प्रभृतिभिरिह यस्योपैति तोषं मनश्च।
व्यसनमति सदाघे नानुकंपा कदाचिन्मुनय इह तदाहुर्ध्यानमेवं हि रौद्रं।

अर्थात्–जो मनुष्य जलाना मारना बांधना छेदना ताड़न करना आदि कार्योंके करनेमें सदा हर्ष मानता है, पाप करनेका जिसको व्यसन पढ गया है और जरा भी हृदयमें दया नहिं रखता वह रौद्रध्यानी कहा जाता है ऐसा मुनियोंका मत है।

हो श्रुत गुरुभक्ती प्राणियोंपे दया हो
  स्तुति यम अरु दानोंमें भि हो तीव्रराग।
मनहि न परनिंदा इंद्रियां होंय वश्य
  यदि, तब वह, शास्त्रोंने कहा धर्म्य शस्य ॥

अर्थात्–भगवान जिनेंद्रद्वारा प्रतिपादित शास्त्रोंमें और गुरुओंमें अचिंत्य भक्ति सदा समस्त जीवोंपर दयाभाव, स्तुति नियम और दानमें अनुराग, परकी निंदा न करना, और इंद्रियोंको वश रखना धर्म्यध्यान है ऐसा हितोपदेशी भगवान सर्वज्ञका उपदेश है।

जिसकी इंद्रिय विषय विरक्त, जो निश्चल निजमें अनुरक्त।
जिसके विशद आत्मका ध्यान, उस मुनिके है शुक्ल सुध्यान॥

अर्थात् समस्त इंद्रियोंकी अपने २ विषयोंसे विरक्ति, आत्मामें किसीप्रकारके विकल्पका न उठना और शुद्ध हृदयसे परमात्माके स्वरूपका चिंतवन करना मुनियोंने शुक्लध्यान वतलाया है॥

इसप्रकार यह चारों ध्यानोंका संक्षेपसे स्वरूप कह दिया

---

१ सुश्रुतगुरुभक्तिः सर्वभूतानुकंपा स्तवननियमदानेष्वस्ति यस्यानुरागः। मनसि न परनिंदा त्विंद्रियाणां प्रशांतिः कथितमिह हितज्ञैर्ध्यानमेवं हि धर्म्यं।

२ खलु विषयविरक्तानींद्रियाणीति यस्य सततममलरूपे निर्विकल्पेऽव्यये यः परमहृदयशुक्लध्यानतल्लीनचेता यतय इति वदंति ध्यानमेवं हि शुक्लं।

गया । इसमें जो ध्यान मरणसमयमें रहता है उसीके अनुकूल गति मिलती है क्योंकि शास्त्रका वचन है—

मरणके समयमें जीवका जैसा ध्यान रहता है उसीके अनुकूल गतिबंध होता है श्रेष्ठी जिनदत्तके मरते समय अपनी भार्याका आर्तध्यान था इसलिये वह (अपने घरकी वावडीमें ही) मैढक हुआ था। मुनिराजके मुखसे जिनदत्तका मैढक होना सुन श्रावकोंने फिर आश्चर्यपूर्वक नम्र हो निवेदन किया—

भगवन्! यह कैसे? उत्तरमें मुनिराजने कहा—

राजगृह नगरमें एक जिनदत्त नामका सेठ जोकि भगवान जिनेंद्रके परमपावन चरणकमलोंके भक्तिरसके आस्वादनमें लीन भ्रमर था, रहता था। उसकी स्त्रीका नाम जिनदत्ता था और वह अपने कमनीयरूपसे इंद्राणीका तिरस्कार करनेवाली परमरूपवती थी। निरंतर गृहस्थ धर्मका आचरण करते २ कदाचित् जिनदत्तका मृत्युकाल समीप आगया। उसके प्राणपखेरू उडना ही चाहते थे कि अचानक ही उसकी दृष्टि अपनी स्त्री जिनदत्ता पर पडी और उसके अनुपम लावण्यको देखकर कामसे पीडित हो वह मनही मन इसप्रकार विचारने लगा—हा!

"है जो स्त्री अति सुंदरी गुणवती संसारमें सौख्यदा
बोलीमें मधुरा विलासकुशला सो छूटती आज हा!

एषा स्त्री सुमनोहरातिसुगुणा संसारसौख्यप्रदा
वाङ्माधुर्ययुता विलास-चतुरा भोक्तुं न शीघ्रं मया।
दैवं हि प्रतिकूलतां गतमलं धिग् जन्म मेऽस्मिन्भवे
यत्पूर्वं खलु दुस्तरं कृतमघं दृष्टं मयैतद् ध्रुवं॥

हुआ निश्चय दैव रुष्ट मुझसे धिक्कार हा जन्म है !!
कीया अर्जन पाप जो प्रथम मैं देखा वही स्पष्ट है ।

देखो! यह स्त्री अत्यंत मनोहर, नाना प्रकारके गुणोंसे भूषित, संसारका अनुपम आनंद प्रदान करनेवाली, सदा मीठे वचन बोलनेवाली और नाना प्रकारके हाव भावोंमें चतुर है परंतु आज दुर्भाग्यसे मेरा इससे वियोग हुआ जाता है इसलिये मेरे इस जन्मको धिक्कार है। हाय! जो मैंने पूर्वभवमें घोर पाप किया था उसका यह प्रत्यक्ष फल देख लिया।

यद्यपि यह संसार असार है परंतु इसमें भी शीतजल चंद्रमा चंदन मालती पुष्पमाला और क्रीडापूर्वक रमणीके मुखका अवलोकन करना अवश्य सार है।"

वस! ऐसा विचार करते करते जिनदत्तकी पर्याय पूरी हो गई और मरकर उक्त आर्तध्यानसे घरके आगनकी वावडीमें मेंढक उत्पन्न हुआ।

कुछ दिनके वाद उसी वापीमें जल लेनेकेलिये जिनदत्ता गई उसे देखते ही मेंढकको जातिस्मरण होगया। वह उसके सामने उछल कूद करने लगा। किंतु जिनदत्ताको उसके उछल कूदसे वडा भय हुआ इसलिये वह शीघ्र ही अपने घरमें घुसआई। इसीप्रकार वह जव जव वापीपर जाती तो उसमें मेंढककी उछल कूद देखकर वापिस लोट आती थी।

कदाचित् जहां तहां विहार करते २ मुनिराज गुणभद्राचार्य पांचसौ मुनियोंके साथ वहां आये और राजगृहनगरके वाह्य उद्यानमें आकर विराज गये। मुनिराजके आगमनमात्रसे ही वन-

की अपूर्व शोभा हो गई । जो अशोक कदंब आम्र बकुल और खजूर आदिके वृक्ष सूखे पडे थे वे उनके माहात्म्यसे फूले फले हो गये और उनपर छोटी बडी शाखायें लहलहा निकलीं एवं कोकिलायें अपना मधुर २ आलाप आलापने लगीं । जो तडाग बावडी आदि जलस्थान जलके अभावसे शुष्क पडे थे वे देखते २ ही लबालब पानीसे भर गये और उनपर राजहंस मयूर आदि पक्षी सानंद क्रीडा करने लगे। जो जातिवृक्ष चंपक पारिजात जपा केतकी मालती और कमल मुरझाये पडे थे वे तत्काल विकसित होगये और भ्रमरगण उनकी सुगंधि तथा रसका पानकर मधुर झंकार शब्द करने लगे और जो गोपियां वसंत ऋतुके अभावसे निःशब्द थीं वे जहां तहां अपनी २ सुरीली आवाजसे कानोंको अतिशय प्रिय गान गाने लगीं ॥ वनको अचानक ही इसप्रकार फूला फला देख वनपालके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। वह बार बार विचारने लगा-क्या मुनिराजके प्रभावसे इस वनकी यह अदृष्टपूर्व शोभा हुई है ? वा इस क्षेत्रका कोई बलवान अनिष्ट होनेवाला है ? जिससे ये प्रथम ही उसके चिह्न प्रगट होगये हैं अस्तु, जो हो ! परंतु मुझे सूचनाकेलिये यहांके कुछ फल लेकर राजाके पास अवश्य जाना चाहिये ऐसा विचारकर उसने कुछ फल तोड लिये और उन्हें महाराजको दिखानेकेलिये राजगृहनगर की ओर चल दिया ।

राजसभामें पहुंचकर वनपालने महाराजको मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और असमयमें होनेवाले जो फल वह लेगया था वे भैंट किये। वनपालको असमयके फल लाया देख महाराजको भी बडा आश्चर्य हुआ । वे चकित हो उससे पूछने लगे—

रे वनपाल ! इन फलोंका यह समय तो नहीं है फिर असमयमें ये फल कैसे ? उत्तरमें वनपालने कहा–

कृपानाथ ? वडा आश्चर्य है ? कृपाकर सुनिये मैं कहता हूं–पांचसौ मुनियोंके संघसे वेष्टित मुनिराज गुणभद्र वनमें आये हैं। उन्होंने जिसक्षणसे उद्यानमें प्रवेश किया है उसी क्षणसे उद्यानके वृक्ष भांति २ के पुष्प और फलोंसे लदवदा गये हैं एवं वहांकी एक विचित्र ही शोभा होगई है।

वनपालके इसप्रकार वचन सुनकर नरपाल तत्काल सिंहासनसे उठे और जिस दिशामें मुनिराज विराजे थे उसी दिशामें सात पैंड चलकर भक्तिभावसे परोक्ष नमस्कार किया एवं अंतःपुर और परिवारको साथ ले शीघ्र ही मुनिवंदनार्थ चल दिये। राजाको मुनिवंदनाके लिये बडे ठाट वाटसे जाते देख मुनियोंके आगमनकी सूचनाका नगरमें कोलाहल मच गया और अनेक श्रावक तथा जिनदत्ता आदि श्राविकायें उन मुनिराजकी वंदनाकेलिये चल दीं। क्रमशः चलते २ सव लोग मुनिराजकेपास पहुंचे और उनकी तीन प्रदक्षिणा दे अत्यंत भक्तिसे नमस्कारकर भूमिपर वैठ गये।

राजगृहनिवासी अनेक सज्जन मुनिराजसे वैराग्यकी प्रार्थना करने लगे, अनेक मुनिदर्शनसे अपनेको धन्य धन्य कहने लगे, और अनेक भूत भविष्यत् वर्तमानकालके वृत्तांतोंको जाननेकी आकांक्षा प्रकट करने लगे। इसी अवसरपर सेठ जिनदत्ताकी स्त्री जिनदत्ता भी मुनिराजके समीप आई और योग्य आसनसे बैठकर प्रणामपूर्वक इसप्रकार निवेदन करनेलगी–

भगवन् ! कृपाकर कहैं। मेरे प्राणनाथ किस गतिमें जाकर

उत्पन्न हुये हैं? जिनदत्ताका वचन सुन अपनी दिव्यदृष्टिसे मुनिराजने जिनदत्तका पता लगाया और उसै मैंढक हुआ जान कहा--

पुत्री ! जिनदत्तकी गतिका तो पता है परंतु कहनेके योग्य नहीं है। उत्तरमें जिनदत्ताने निवेदन किया--

भगवन् ! आप क्यों वृथा असलीहालके बतानेमें संकोच कर रहे हैं ! स्वामिन् ! इसका नाम तो संसार है इसमें उत्तम भी अधम हो जाते हैं और अधम भी उत्तम। इसलिये संकोच करना निरर्थक है। मुनिराजने कहा--

"पुत्री ! यदि ऐसा है तो सुनो-तुम्हारा पति मैंढक हुआ है और वह तुम्हारे घरकी वापीमें रहता है।" मुनिराजके ऐसे वचन सुन जिनदत्ताको वडा आश्चर्य हुआ। वह मनमें यह विचार कर कि-'मुनिराजका कथन सर्वथा सत्य है वापीपर पहुंचते ही जो मैंढक प्रतिदिन मुझे देखकर उछलता कूदता है वह अवश्य मेरा स्वामी होना चाहिये' फिर मुनिराजसे बोली--

"भगवन् ! मेरा स्वामी तो पूर्णरूपसे इंद्रियोंका वश करनेवाला, कृतज्ञ, विनयी, क्रोधादि कषायोंका दमन करनेवाला, सदा प्रसन्न, सम्यग्दृष्टि, महापवित्र जिनेंद्र भगवानके वचनोंपर श्रद्धा रखनेवाला, उत्तम परिणामोंका धारक, देवपूजा गुरुसेवा स्वाध्याय संयम तप और दान इन छै आवश्यक कर्मोंका सदा करनेवाला, व्रत शील आदिसे युक्त, मक्खन मद्य मांस मधु ऊमर कठूमर आदि पांच उदुंबर, अनंत जीवोंके धारक फल पुष्प आदि रात्रिभोजन कच्चे गोरसमें साने विदल भोजन, पुष्पित चावल और दो दिनके बने हुये आदि भोजनोंका त्यागी, अहिंसादि पां-

च अणुव्रतोंका भलेप्रकार पालन करनेवाला, पापसे भयमीत और दयाका सागर था फिर वह मैंढक जातिका तिर्यंच कैसे होगया?" जिनदत्ताकी यह युक्त शंका सुनकर मुनिराजने कहा—

"पुत्री! तूने जो, कुछ कहा वह सव सत्य है परंतु सुन—श्रावकके व्रत धारण करनेपर भी अंतसमयमें जीवके जैसे परिणाम रहते हैं उन्हींके अनुसार गतिबंध होता है वह टल नहिं सकता। मरते समय तेरे पति जिनदत्तके तेरा आर्तध्यान होगया था इसलिये उस आर्तध्यानके कारण और ज्वरकी पीडापूर्वक मरनेसे उसे अपनी वापीके अंदर मेढक होना पडा।" मुनिका यह उत्तर सुन जिनदत्ताने फिर पूछा--

महाराज! सुखकी प्राप्तिके लिये जप तप किया जाता है यदि उसके करनेपर भी सुख न मिला तो जप तप संयम आदि कार्योंका करना ही व्यर्थ है?

जिनदत्ताके इन मुग्ध वचनोंसे थोडा हंसकर उत्तरमें मुनि बोले-नही पुत्री! जप तप आदि कार्योंका आचरण करना व्यर्थ नहीं, अवश्य उनसे शुभगति और उत्तमसुख आदिकी प्राप्ति होती है परंतु यह अवश्य ध्यानमें रखना चाहिये कि अंत समयमें यदि जीवके शुभ भाव रहैंगे तो नियमसे उसै शुभगति और उत्तम सुखकी प्राप्ति होगी और यदि अशुभ रहैंगे तो अशुभ गति और दुःख भोगना पडेगा। परंतु हां! कुछ समय वाद अशुभ गतिका दुःख भोगकर और पुनः शुभगतिमें जाकर वह अवश्य सुख भोगैगा क्योंकि स्थितिमें कमी वेशी हो सकती है गतिबंध नहिं टल सकता। तु निश्चय समझ! तेरा पति जिनदत्त कुछ समय-

बाद मैंढककी पर्याय समाप्तकर नियमसे देव होगा॥" मुनिराजके यथार्थ वचन सुन जिनदत्ता अतिप्रसन्न हुई और मुनिराजको प्रणामकर अपने घर चली गई। इसप्रकार जिनदत्ताकी कथा सुनाकर मुनि चंद्रसेनने कहा—

श्रावको! इसीलिये मैंने कहा था कि मरण समयमें जैसा मनुष्योंका ध्यान रहता है उसीके अनुकूल उन्हें गतिबंध होता है सेठ जिनदत्तके मरण समयमें आर्तध्यान था इसलिये उसे मैंढक होना पडा तथा उसीप्रकार हेमसेन मुनिका जीव आर्तध्यानसे खरबूजाका कीडा हुआ है। बस इसप्रकार आर्तध्यानका स्वरूप और उसका फल सुनाकर रतिने अपने स्वामी मकरध्वजसे कहा—

प्राणनाथ! इसीलिये मैं कहती हूं कि वृथा आप आर्तध्यान न करैं अन्यथा आपको भी मुनि हेमसेनके समान तिर्यंच गतिमें भ्रमना पडेगा। बस! रतिका इतना कहना ही था कि मारे क्रोधके मकरध्वज जल भुनकर खाक होगया वह बोला—

री दुश्चरित्र! क्यों वृथा बकती है? जो कुछ तूने ढोंग रचा है मैं उसे अच्छीतरह समझता हूं। पापिनी! तू चाहती है कि मैं शोकसे संतप्त हो मरजाऊं और तू किसी नवीन मनुष्यको पति बनाकर आनंदके गुलछर्रे उडावे। हा! स्त्रियोंकी कभी एक ओर प्रीति नहिं होती। भ्रमरके समान सदा अनेक मनुष्योंमें उनका चित्त डामाडोल रहता है। कहा भी है—

अन्य संग जिसका जल्पन है अन्य ओर लोचन संपात
जिसकी हृदयचिंतना औरहि ऐसी रमणी दुख उत्पात।

1 जल्पंति सार्धमन्येन पश्यत्यन्यं सविभ्रमात्।

यथा अग्निकी समिधिवर्गसे उदधीकी सरितागणसे
तृप्ती महा असंभव मानी तथा रमाकी नरगणसे ॥
जो होती स्वभावसे वंचक निर्दय चंचल दुश्शीला
वह रमणी कब हो सकती है मानवगणको सुखशीला।
जिसका कथन अन्य ही होता मनका अन्यरूप व्यापार
करती अन्य क्रिया जो तनसे उस वनितासे दुःख अपार ॥
सेवन करती यह कुशील नित खोती कुलमर्यादा मान
पिता आदिकी कीर्तिलताका भी नहिं रखती कुछ भी ध्यान।
देव दैत्य अहि व्याल आदिके कार्यज्ञानमें भी पंडित
रमणीके चरित्रवर्णनमें होजाते सहसा खंडित ॥
सौख्य दुःख जय जीना मरना आदि ज्ञानके भी भंडार
रमणीके असली चरित्रका जरा नहीं पासकते पार ॥
विस्तृत भी जलधीके तटपर पोत, गगन सीमा तारे
जाते पहुंच, किंतु रमणीके चरित ज्ञानमें सब हारे।

हृद्गतं चिंतयत्यन्यं न स्त्रीणामेकतो रतिः ॥
नाग्निस्तृप्यति काष्ठौघैर्नापगानां महोदधिः ।
नांतकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचनाः ॥
वंचकत्वं नृशंसत्वं चंचलत्वं कुशीलता ।
इति नैसर्गिका दोषा यासां ता सुखदाः कथं ॥
वाचि चान्यन्मनस्यन्यत्क्रियायामन्यदेव हि ।
यासां साधारणं स्त्रीणां ताः कथं सुखहेतवः ॥
विचरंति कुशीलेषु लंघयंति कुलक्रमं ।
न स्मरंति गुरुं मित्रं पतिं पुत्रं च योषितः ॥
देवदैत्योरगव्यालग्रहचंद्रार्कचेष्टितं ।
जानयंति महाप्राज्ञास्तेऽपि वृत्तं न योषितां ॥
सुखदुःखजयपराजयजीवितमरणानि ये विजानंति ॥
मुह्यंति तेऽपि नूनं तत्त्वविदश्चेष्टिते स्त्रीणां ॥
जलधेर्यानपात्राणि ग्रहाद्या गगनस्य च ।

व्याध व्याघ्र केहरि हाथी नृप भी नहिं करते वह अपकार
करती निरंकुशा रमणी जो निर्दय हो दुखका भंडार ॥

शार्दूलविक्रीडित

जो रोतीं अरु अट्टहास्य हंसतीं हैं द्रव्यके लोभसे
जो विश्वास करें न अन्य जनका पै हैं करातीं उसे।
ऐसी निंदित नारियां बुधजनोंको त्यागनी सर्वदा,
प्रेतोंके थलपै पड़ीं मटकियोंके तुल्य, दुःखप्रदा।

अर्थात् स्त्रियां वात किसी औरके साथ करती हैं, कटाक्षोंको चलाकर देखती किसी औरकी ओर हैं, मनमें कोई दूसरा ही विचार करतीं हैं इसलिये इनका किसी एकपर प्रेम नहिं होता। जिसप्रकार वडेसे वडे काष्ठके ढेरोंसे अग्निकी, अगणित नदियोंसे समुद्रकी, समस्त प्राणियोंके मिलनेपर भी यमराजकी तृप्ति नहिं होती उसीप्रकार वहुतसे भी मनुष्योंसे स्त्रियां तृप्त नहिं हो सकतीं। जिनमें ठगना निर्दयपना चंचलता और कुशीलता आदि कुत्सित भाव, स्वभावसे ही रहते हैं वे स्त्रियां कैसे सुख देनेवाली हो सकतीं हैं? कभी नहीं। जो स्त्रियां स्वभावसे ही बोलती कुछ और हैं, मनमें कुछ और विचारतीं हैं और शरीरसे कुछ और ही चेष्टा करतीं हैं वे स्त्रियां कभी सुखका कारण नहिं हो स-

---

यांति पारं न तु स्त्रीणां दुश्चरित्रस्य केचन ॥
न तु क्रुद्धहरिव्याघ्रव्यालदुष्टनरेश्वराः।
कुर्वंति यत्करोत्येका नरं नारी निरंकुशा ॥
एता हसंति च रुदंति च वित्तहेतो—
र्विश्वासयंति च नरं न च विश्वसंति।
तस्मान्नरेण कुलशीलपराक्रमेण—
नार्यः श्मशानघटिका इव वर्जनीयाः ॥

कतीं । स्त्रियां सदा कुशीलसेवन करतीं हैं कुलमर्यादाका ध्यान नहिं रखतीं, गुरु पिता मित्र पति और पुत्रोंका भी लिहाज नहिं करतीं । इससंसारमें देव दैत्य सर्प हाथी ग्रह चंद्र सूर्य आदिकी भी चेष्टाओंके जाननेवाले वडे २ विद्वान मोजूद हैं परंतु स्त्रियोंका असली चरित्र वे भी नहिं जानते । जो चतुरपुरुष सुख दुःख जय जराजय जीवन मरण आदिके स्वरूपको स्पष्टरूपसे जानते हैं खेद है स्त्रियोंके चरित्रके जाननेमें वे भी मूढ वने रहते है-स्त्रियोंके असली चरित्रका पता उन्हैं भी नहिं मिलता । विशाल समुद्रको भी जहाज पार करजाते हैं, तारागण भी आकाशके कठिन मार्गको तयकर लेते हैं परंतु स्त्रियोंके दुश्चरित्रका कोई पार नहिं पा सकता । यद्यपि क्रोधसे भरे हुये सिंह व्याघ्र दुष्ट सर्प हाथी और राजा भी मनुष्यका भयंकर अपकार कर सकते हैं परंतु एक निरंकुश स्त्री जितना अपकार करसकती है उतना इनसे नहिं हो सकता । और भी कहा है—

ये स्त्रियां धनकेलिये हाल ही खिलखिला उठतीं हैं और हाल ही रोना चिल्लाना मचा देतीं हैं, दूसरेको अपना विश्वास तो करा देती हैं परंतु स्वयं किसीका विश्वास नहिं करतीं इसलिये जो पुरुष कुलीन शीलवान और पराक्रमी हैं उन्हैं चाहिये कि श्मसान भूमिमें रक्खीहुई हांडियोंके समान वे स्त्रियोंका सर्वथा त्याग करदें ।" इसप्रकार अपने प्राणनाथ मकरध्वजके अत्यंत लंबे और क्रूर वचन सुन महाराणी रतिको वडा दुःख हुआ वह उत्तरमें इसप्रकार विनयभावसे वोली—

"प्राणनाथ ! आपने कहा सो तो ठीक है परंतु यह अवश्य

ध्यानमें रखिये कि—जन्मसे कोई उत्कृष्ट नहिं गिना जाता जो कुछ उत्कृष्टता होती है वह उत्तमोत्तम गुणोंके उदयसे होती है। देखिये-जिसप्रकार रेशमकी उत्पत्ति निकृष्ट कीडासे होती है, सुवर्णकी पत्थरसे, दूवकी गोलोमसे, कमलकी कीचड़से, चंद्रमाकी समुद्रसे, नीलकमलकी गोवरसे, अग्निकी काष्ठसे, मणिकी सांपके फणसे और गोरचन आदिकी गोके मस्तक आदि निकृष्ट पदार्थोंसे उत्पत्ति होती है परंतु वे अपने चमक दमक और उज्ज्वलता आदि गुणोंसे उत्कृष्ट गिने जाते हैं उसीप्रकार यद्यपि समस्त स्त्रियां अच्छी नहीं परंतु अपने उत्तमोत्तम गुणोंसे उनमें भी कोई उत्तम गिनी जा सकती है। इसलिये जीवनाधार! आपको ठगकर हम कहां जासकती हैं? किसको अपना हृदयेश्वर बना सकती हैं? कृपाकर अब ऐसे दुःखदायी वचन न कहें।" मकरध्वज और रतिके परस्पर ऐसे वचन सुन प्रीतिको परम दुःख हुआ वह बोली—

"सखी! इस वाद विवादकी क्या आवश्यकता है? व्यर्थ तूने संदेह किया था इसलिये तुझै ऐसा सुनना पडा। आ चल, प्राणनाथकी आज्ञाका अपन पालन करैं। देख! खिन्न होनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि—

ईश्वर भी महादेव अभीतक कालकूटको नहिं छोडते अर्थात् वैष्णव धर्ममें यह कथा है कि जिससमय समुद्रका मथन किया गया था उससमय उससे अमृत लक्ष्मी विष आदि पदार्थ निकले थे उनमेंसे अमृतको तो देवताओंने और लक्ष्मी आदि उत्कृष्ट पदार्थोंको विष्णु आदिने ग्रहण किया था। अवशिष्ट कालकूट रहगया था जब उसको किसीने ग्रहण न किया तो उसै महादेवने अपने

कंठमें धारण करलिया और आजतक वे उसे धारण कर रहे हैं छोडते नहीं। कछुवेने अपने पृष्ठभागपर पृथ्वीका भार रखना स्वीकार किया था वह अभीतक धारण किये है और समुद्रने दावानलको स्वीकार किया था वह अभीतक उसे अपने पेटमें रक्खे है इसलिये यह स्पष्ट मालूम पडता है कि उत्तम पुरुष जिसबातको स्वीकार करलेते हैं उसका अवश्य पालन करते हैं-घबड़ाकर बीचमें ही नहिं छोड देते। इसलिये जो मुक्तिवनिताके समझानेका कार्य स्वीकार किया है वह अवश्य पालना चाहिये। और भी–

सूर्यवंशी राजा हरिश्चंद्रने चांडालकी सेवाकी थी अर्थात् वैष्णव धर्ममें यह प्रसिद्ध है कि हरिश्चंद्र बडा प्रकृष्ट दानी था किसी याचकको वह किसी पदार्थकी मनाई नहीं करता था इसलिये एक दिन विश्वामित्रने आकर उससे समस्त राज्य मांग लिया जिससे राजाको राज छोडकर काशी आना पडा और वहां चांडालकी सेवा करनी पडी। रामचंद्र सूर्यवंशके परम पराक्रमी नरेश थे परंतु उन्हें भी वनमें आकर पर्वतकी महाभयंकर गुफाओंका आश्रय करना पडा। भीम अर्जुन आदि महापराक्रमी चंद्रवंशी राजाओंको भी कुरुवंशियोंके सामने दीनता धारण करनी पडी थी इसलिये जब यह बात प्रथमसे ही चली आई है कि अपनी २ प्रयोजनसिद्धिकेलिये मनुष्योंने नीचसे नीच और कठिनसे कठिन भी काम कर डाले हैं तब मैं परमरूपवती होकर सामान्य मुक्तिरूपी स्त्रीके सामने कैसे दीनता धारण करूंगी, ऐसा तुझे भी अपने मनमें किसी-प्रकारका अंदेशा न करना चाहिये" बस! इसप्रकार प्रीतिके स-

मझानेसे महाराणी रतिने शीघ्र ही आर्यिकाका रूप धारण कर लिया और जिसप्रकार हस्तिनी क्रुद्ध हाथीके पाससे खसक देती है उसीप्रकार रति भी मकरध्वजके समीपसे चलदी।

चलते चलते रति थोडी ही दूर पहुंच पायी थी कि उसकी मंत्री मोहसे मार्गमें भैंट होगई और उन दोनोंकी परस्पर यों बातचीत होने लगी—

मोह—स्वामिनी! यह क्या? यह विचित्ररूप धारणकर आपने इस विषम मार्गमें कैसे प्रवेश किया?

रति—(समस्त वृत्तांत सुनाकर) महाराजकी आज्ञासे।

मोह—जिससमय दूत संज्वलनने विज्ञप्ति भेजी थी उससमय मुझे भी यह सब समाचार मालूम पड गया था और महाराजने मुझै सेना तयार कर लानेकेलिये भेजा था परंतु यह उन्होंने बहुत ही अनुचित किया कि मैं उनके पास भी न पहुंच पाया कि उन्होंने अधीर हो वीचमें ही यह आपके साथ अनुचित वर्ताव करडाला।

रति—नहिं मोह! इसमें महाराजका कुछ भी दोष नहीं हैं तुम निश्चय समझो-जो मनुष्य विषयी होते हैं उन्हैं अच्छा बुरा कुछ भी नहिं सूझता-क्योंकि यह प्रसिद्ध बात है—

कमलके समान सुंदरनेत्रोंकी धारण करनेवाली देवांगनाओंके होनेपर भी इंद्र तापसी अहिल्यापर मुग्ध होगया था और उसके साथ विषय भोग किया था इसलिये यह बात स्पष्ट मालूम पडती है कि तृणोंके वंने हुये घरमें अग्निके फुलिंगेके समान जिससमय हृदयमें कामाग्नि प्रज्वलित होजाती है उससमय विद्वानोंकी भी अच्छे बुरे-

का विचार करनेवाली बुद्धि जलकर भस्म हो जाती है। महाराज मकरध्वज इससमय मुक्ति वनिताकेलिये लालायित हैं भला वे कैसे हित अहितका विचार कर सकते हैं ? उन्हें यह नहीं मालूम कि मुक्तिवनिता सिवाय भगवान जिनेंद्रके किसीकी ओर देखना तक भी नहिं चाहती फिर उनका उसकेलिये लालायित होना कहांतक युक्त है ? ठीक भी है जो पुरुष परस्त्रीको चाहते हैं वे अवश्य ही दुःख भोगते हैं क्योंकि-

स्त्रियां संसारकी कारण हैं नरकके द्वारको उद्घाटित करनेवाली हैं शोक और कलहकी मूल कारण हैं। जो पुरुष परस्त्रियोंके सेवन करनेवाले हैं इस लोकमें तो उनके सर्वस्वका हरण मारण तारण और हाथ पैर आदि शरीरके अवयवोंका छेदन होता ही है परंतु परलोकमें भी मरकर या तो वे नरक जाते हैं या नपुंसक तिर्यंच आदिके दुःख भोगते हैं।" रतिके ऐसे वचन सुन मंत्री मोहने कहा-

स्वामिनी ! आपका कहना बिलकुल यथार्थ है परंतु यह निश्चय समझो जैसा जिसका होना होता है उसका वैसा अवश्य होता है-वह टल नहिं सकता। कहा भी है-

भवितव्यं यथा येन न तद्भवति चान्यथा।
नीयते तेन मार्गेण स्वयं वा तत्र गच्छति ॥

अर्थात्-जो बात जैसी होनी होती है होकर मानती है अन्यथा नहीं होती, क्योंकि या तो उस होनेयोग्य बातके अनुकूल ही कारणकलाप मिल जाते हैं या स्वयं वैसे कारण कलापोंको मनुष्य एकत्र करलेता है। और भी कहा है-

नहि भवति यन्न भाव्यं भवति न भाव्यं विनापि यत्नेन।
करतलगतमपि नश्यति यस्य च भवितव्यता नास्ति।

अर्थात्--जो बात अनहोनी होती है वह हो नहिं सकती और जो होनेवाली है वह अनेक उपायोंके करनेपर भी रुक नहिं सकती। देखनेमें आता है कि जिसको जिस चीजकी प्राप्ति होनी वदी नहिं होती उसके हाथपर रक्खी हुई भी वह चीज देखते २ नष्ट हो जाती है।

रति--मोह! तो कहो अव क्या करना चाहिये! यदि मैं पुनः तुम्हारे साथ लोटकर महाराजके पास चलती हूं तो वे कुपित होते हैं इसलिये यही अच्छा है कि तुम उनके पास जाओ और मैं तुम्हारे साथ न चलूं।

मोह--नहीं स्वामिनी! यह ठीक नहीं, तुम्हें अवश्य मेरे साथ चलना होगा।

रति--अच्छा! चलना मुझे मंजूर है पर यह तो वतलाओ जिससमय महाराज मुझे अपने पास देखेंगे उससमय उनके पूछनेपर क्या उत्तर दोगे?

मोह--स्वामिनी! इसवातकी चिंता करना व्यर्थ है क्योंकि यह सामान्य नियम है कि जिसप्रकार वर्षाके जलसे बीज फिर उससे वीज इसप्रकार बीजोंकी संतति उत्पन्न होती जाती है उसीप्रकार वचन वोलनेवालेंमें पहिले एक बोलता है पीछे उसका उत्तर फिर उसका उत्तर इसप्रकार उत्तर प्रत्युत्तरोंकी भी लडी लग जाती है।" वस रानी रतिने मोहके वचन स्वीकार करलिये और दोनों महाराज मकरध्वजके पास जा पहुंचे।

इसप्रकार माइदेवके पुत्र जिनदेवद्वारा विरचित मकरध्वजपराजयकी भाषा वचनिकामें श्रुतावस्याननामक प्रथम परिच्छेद समाप्त हुआ॥ १॥

द्वितीय परिच्छेद ।

महाराज मकरध्वज अपने मनोहर शयनागारमें अतिशय कोमल सेजपर पडे थे और मुक्तिकामिनीकी गंभीरचिंतासे कभी सुख तो कभी दुःखके समुद्रमें गोता मारते हुये मंत्री मोहकी राह देख रहे थे कि अचानक ही मोह उनके पास पहुंचा और महाराणी रतिके साथ उसे आता देख वे एक दम अवाक् रहगये । कुछ सयय तक शयनागारमें सन्नाटा छा गया । महाराजने मोहसे कुछ भी न कहा इसलिये महाराजकी ऐसी विचित्र चेष्टा देखकर मोह ही अपने गंभीर स्वरसे बोला--

"कृपानाथ ! जवतक मैं आ भी न पाया उसके पहिले ही आपने ऐसी वेसवरी की । इसकी क्या आवश्यकता थी आपको कुछ तो संतोष रखना चाहिये था । दूसरे क्या आज तक किसी विज्ञ पुरुषने अपनी स्त्रीको कभी दूतीका काम सौंपा है ? जो आपने महाराणी रतिको दूती वना मुक्तिवनिताके पास भेजनेका साहस कर डाला ! क्या आपको यह मालूम नहीं--जहांपर मुक्तिकन्या रहती है उस स्थानका मार्ग महाविषम और कंटकाकीर्ण है और वहांपर उसके अत्यंत बलवान संरक्षक रहते हैं कदाचित् वे महाराणी रतिको देखते और उसे मार डालते तो क्या आपको स्त्रीहत्याका दोष न लगता अथवा सर्वत्र आपकी हंसी न होती ? इसलिये मेरी विना सम्मातिलिये जो आपने विचार किया यह सर्वथा अनुचित किया क्योंकि कहा है--

हरिगीती २८ मात्रा ।

दुरमंत्रसे नृप नष्ट अरु यति संगसे, सुत लाड़से

द्विज ज्ञानके विन, कुल कुसुतसे, शील खलविश्वाससे ।
सखिता अरतिसे, कुनयसे वृद्धी, विदेश निवाससे-
रति, मद्यसे लज्जा, कृषी विन जांच, द्रव्य प्रमादसे ॥

अर्थात्--दुर्विचारसे राजा नष्ट हो जाता है; वहुत परिग्रहके धारण करनेसे यति, अधिक लाड प्यारसे पुत्र, विना विद्याभ्यासके ब्राह्मण, कुपुत्रसे कुल, दुष्टोंके सहवाससे स्वभाव, स्नेहके न रखनेसे मित्रता, अनीतिसे समृद्धि, परदेशमें रहनेसे स्नेह, मद्यपानसे लज्जा, देखरेख न करनेसे खेती और छोडदेने वा प्रमादसे धन नष्ट हो जाता है । इसलिये राजाको चाहिये कि वह विना मंत्रीकी सलाहके स्वयं किसी कार्यको न करै । मंत्रीके ऐसे वचन सुन महाराज मकरध्वजने कहा---

मोह ! इन व्यर्थकी वार्तोंको रहने दो । अच्छा यह वतलाओ जिस कार्यकेलिये तुम्हें भेजा गया था वह तुमने कैसा और क्या किया ? उत्तरमें मोहने कहा---

कृपानाथ ! जिस कार्यकेलिये आपने मुझै भेजा था वह कार्य पूर्णरूपसे हो चुका । स्वामिन् ! मैंने इसरूपसे सेना सजाई है कि मुक्ति, आपकी ही वनिता होजाय और राजा जिनराज भी आपकी सेवा कर निकले । मोहकी इस खुशखवरीसे प्रसन्न हो मकरध्वज वोले---

---

१ दुर्मंत्रान्नृपतिर्विनश्यति यतिः संगात्सुतो लालना-
द्विप्रोऽनध्ययनात्कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात् ।
मैत्री चाप्रणयात्समृद्धिरनयात् स्नेहः प्रवासाश्रयात्-
ह्री मद्यादनवेक्षणादपि कृषिस्त्यागात्प्रमादाद्धनं ॥ १ ॥

मोह ! तुमने ठीक किया । भला, सिवाय मोहके ऐसा कौन कर सकता है ?

मोह--स्वामिन् ! बुद्धिमान मनुष्य क्या नहिं कर सकते जब वे महाभयंकर भी सर्प बाघ हाथी और सिंहोंको वश करलेते हैं तब अन्य किस कार्यको वे कठिन मान सकते हैं ?

मकरध्वज--मोह ! तुम ठीक कहते हो विना बुद्धिके कुछ भी नहीं हो सकता। ज्ञानवान भी मनुष्य विना बुद्धिके मूर्ख गिने जाते हैं। अच्छा मोह ! मैं तुमसे यह पूछना चाहता हूं कि तुमने जो सेनाका संगठन किया है वह यहां ही है या कहीं अन्यत्र ?

मोह--स्वामिन् ! सेनाको इकट्ठाकर मैं एक स्थानपर छोड आया हूं और आत्मिक मनुष्योंसे यह कहकर कि जबतक मैं महा-राजकी आज्ञा लेकर आऊं, यहीं रहना आपके पास आया हूं। अब आपकी आज्ञा ही प्रमाण है-जैसी आपकी इच्छा हो वैसा किया जाय।

महाराज--(आनंदमें आकर मोहको छातीसे लगाकर) मोह ! वास्तवमें तुम्हीं हमारे सर्वश्रेष्ठ मंत्री हो तुम्हें स्वयं इस राज्यकी रक्षा करनी चाहिये मुझे क्या पूछते हो। जो तुम्हें उचित दीख पडै सो करो। क्योंकि--

मंत्रिणां भिन्नसंधाने भिषजां सान्निपातके ।
कर्मणि युज्यते प्रज्ञा स्वस्थे वा को न पंडितः ॥

अर्थात् जब संधिका भेद होता है-राज्यपर गहरी विपत्ति आकर पडती है उससमय मंत्रियोंकी बुद्धि और जिससमय सन्नि-पात ज्वरका भयंकर प्रकोप होता है उससमय वैद्योंकी बुद्धिकी परीक्षाकी जाती है क्योंकि स्वस्थ दशामें तो सभी पंडित होते हैं।

मोह--यदि ऐसा है-तो मेरी राय है कि सैन्य ले चलनेके पहिले ही शत्रु जिनराजके पास दूत भेजने चाहिये ? क्योंकि--

पुरा दूतः प्रकर्तव्यः पश्चाद् युद्धः प्रवर्तते।
तस्माद् दूतं प्रशंसंति नीतिशास्त्रविचक्षणाः॥

अर्थात् पहिले दूत और फिर युद्धका प्रबंध करना चाहिये ऐसा नीतिशास्त्रज्ञोंका मंतव्य है।

मकरध्वज--मोह! तुम्हारा कहना यथार्थ है परंतु योग्य दूतका प्रबंध करना आवश्यक होगा।

मोह--स्वामिन्! राग और द्वेष दूतकर्ममें अत्यंत प्रवीण हैं इसलिये उन्हें ही दूत बनाकर भेजना चाहिये।

मकरध्वज--क्या सत्य ही राग द्वेष दूतकर्ममें प्रवीण हैं ? वे इस कार्यका पूर्णरूपसे संपादन कर सकते हैं ?

मोह--हां महाराज! राग और द्वेषकी बराबर चतुर कोई इस कार्यमें नहीं है क्योंकि उनके विषयमें यह प्रसिद्ध है कि--

एतावनादिसंभूतौ रागद्वेषा महाग्रहौ।
अनंतदुःखसंतानप्रसूतेः प्रथमांकुरौ॥
स्वतत्त्वानुगतं चेतः करोति यदि संयमी।
रागादयस्तथाप्येते क्षिपंति भवसागरे॥
अयत्नेनापि जायेते चित्तभूमौ शरीरिणां।
रागद्वेषाविमौ वीरौ ज्ञानराज्यांगघातकौ॥
कचिन्मूढं कचिद्भ्रांतं कचिद्भीतं कचिद्द्रुतं।
शंकितं च कचित्क्लिष्टं रागाद्यैः क्रियते मनः॥

अर्थात् महाभयंकर पिशाचके समान राग द्वेष अनादिकालसे हैं और अगणित दुःखोंकी संतानके उत्पन्न करनेमें नवीन अंकु-

रोंके समान हैं। संयमी मनुष्य आत्मतत्त्वके विचारमें लीन भी रहे तथापि राग द्वेष उसके हृदयमें प्रविष्ट हो जाते हैं और उसे संसार समुद्रमें गोता खवाते हैं। विना प्रयत्नके ही शुद्ध भी की हुई चित्त-भूमिके अंदर राग द्वेष पैठ जाते हैं और सम्यग्ज्ञानरूपी राज्यको छिन्न भिन्न कर देते हैं। इन राग और द्वेपकी ही कृपासे कभी तो मन मूढ, कभी भ्रांत, कभी भयभीत, कभी शंकित और कभी नानाप्रकारके क्लेशोंसे परिपूर्ण हो जाता है।

इसप्रकार मंत्री मोहसे राग द्वेषकी पूर्ण प्रशंसा सुन महाराजने शीघ्र ही उन्हें अपने पास बुलाया और बडे सन्मानसे अपने शरीरके वस्त्र भूषण प्रदान कर कहा-

देखो भाई! जो कुछ भी दूतकर्म होगा वह तुम्हें इससमय करना होगा।

राग द्वेष—कृपानाथ! आप आज्ञा दीजिये। हम उसे सहर्ष करनेकेलिये तयार हैं।

मकरध्वज—अच्छा! तुम अभी चारित्रपुर जाओ और राजा जिनेश्वरसे यह कहो-राजन्! तुम जो मुक्तिकन्याके साथ विवाह कररहे हो सो क्या तुमने जगद्विजयी सम्राट् मकरध्वजकी आज्ञा लेली है? महाराज मकरध्वजकी आज्ञा है कि विवाह बंदकरो और तीनों-लोकमें सर्वथा उत्तम जिन तीनों रत्नोंको तुम उनके शास्त्र भंडारसे चुराकर ले आये हो जल्दी वापिस कर दो! अन्यथा अपनी विशाल सेनासे मंडित हो वे प्रातःकाल ही यहां आजावेंगे और तुम्हें अवश्य उनकी आज्ञा माननी पड़ेगी।

महाराज मकरध्वजकी आज्ञा पाकर दूत चलदिये और

विषम मार्गको तय करते हुये चारित्रपुरमें जा पहुंचे। परंतु ज्यों ही दोनों दूतोंने चारित्रपुरमें प्रवेश किया जिनराजके माहात्म्यसे उनकी सब सुधि बुधि विदा होगई। जिनराजके सामने जाना तक उन्हें असाध्य होगया इसलिये चारित्रपुरके निवासी राजा कामके गुप्तचर संज्वलनके पास वे पहुंचे और इसप्रकार कहने लगे—

भाई संज्वलन! स्वामी मकरध्वजकी आज्ञानुसार हम यहां दूतकर्म करनेकेलिये आये हैं।

संज्वलन—यह तो ठीक है परंतु यह तो बताओ तुम दोनोंने अपनी वीरवृत्तिको छोडकर यह दूतवृत्ति क्यों धारण की?

रागद्वेष—संज्वलन! क्या तुम नहिं जानते-जो पुरुष स्वामीकी आज्ञाका प्रतिपालन करते हैं वे करने योग्य वा न करने योग्य कार्यका विचार नहिं करते क्योंकि यदि वे स्वामीकी आज्ञामें दखल दे निकलें तो स्वामी उन्हें प्रेमकी दृष्टिसे नहिं देखता। देखो—

जो पुरुष भयसे रहित होकर रणको शरण और विदेशको देश, समझता है, शीत वात वर्षा और गर्मीसे दुःखित नहिं होता, न अभिमान करता है, न सन्मान होनेपर फूलता और अपमान होनेपर कृश होता है, सदा अपने अधिकारकी रक्षा करता है स्वामीके ताडन मारण, गाली गलौज और दंडको पाप नहिं समझता विना बुलाये ही स्वामीके समीप रह कर सदा उसकी सेवामें लगा रहता और पूछनेपर सत्य बोलता है, काम पडनेपर अग्रणी और सदा स्वामीके पीछे २ चलता है एवं प्रसन्नतापूर्वक स्वामीसे पाये हुये धनको सुपात्रमें अर्पण करता है, वस्त्र आदिको अपने अंगमें

धारण करता है वही राजा वा स्वामीका प्रेमभाजन होता है इसलिये महाराजकी आज्ञानुसार चलना हमारा परमधर्म है। तथा भाई संज्वलन! सेवाधर्म बडा गहन है। देखो! जो पुरुष सेवासे धन उपार्जन करना चाहते हैं उनका शरीर भी स्वतंत्र नहिं रहता। वे सदा स्वामीकी आज्ञामें दत्तचित्त रहते हैं। विद्वान पुरुषोंकी दृष्टिमें दरिद्री रोगी मूर्ख परदेशी और सेवक ये पांच प्रकारके मनुष्य जीते हुये भी मरे हुये हैं। जो पुरुष विद्वान हैं उनको हिंसक जीवोंसे व्याप्त वनमें रहना, भिक्षावृत्तिसे वा कडवी तूमीके भोजनसे निर्वाह करना और अधिक भार लादकर भी जीवन व्यतीत करना अच्छा, परंतु सेवाकर उदरका निर्वाह करना वा उससे राजाकी विभूतिका भी मिलना अच्छा नहीं। सेवक मनुष्यसे बढकर संसारमें कोई भी अधिक मूर्ख नहीं। जो अपनी पूछकेलिये राजाको प्रणाम करता है, आजीविकाकेलिये प्राणोंका त्याग और सुखकेलिये स्वामीकी आज्ञानुसार घोर दुःख सहता है। सेवक जब भांति २ के स्वामीके वचनोंका मर्म नहिं समझता उससमय स्नेहपूर्वक उत्तम कार्यके करनेपर भी कभी तो स्वामी उससे रुष्ट हो जाता है और कभी विना मनके हीन काम करने पर भी वह संतुष्ट हो जाता है। यदि सेवक अधिक बोलना नहिं जानता तो स्वामी उसे गूंगा कहता है, यदि लच्छेदार बात करता है तो स्वामी उसे वातूल और असंबद्ध प्रलाप करनेवाला मानता है। एवं सदा पासमें रहनेपर वेवकूफ, शांतिपूर्वक गाली गलोज सुननेपर डरपोक और कुछ कहनेपर यदि उत्तर देता है तो अकुलीन कहाजाता है इसलिये सेवा धर्मका विद्वान यति भी पता नहिं लगा सकते॥" रागद्वेषके ऐसे विद्वत्तापरिपूर्ण वचन सुनकर संज्वलनने कहा—

भाई राग और द्वेष! तुमने बिलकुल ठीक कहा है। वास्तवमें स्वामीकी आज्ञा और सेवाधर्म ऐसे ही हैं। अच्छा अब बतलाओ मुझसे तुम क्या कार्य कराना चाहते हो?

राग और द्वेष–भाई संज्वलन! जिसरूपसे हो सकै उसरूपसे हमें जिनेंद्रका साक्षात्कार करादो।

संज्वलन–(मनमें कुछ अधिक चिंतित होकर) भाई! जिनेंद्रका साक्षात्कार होना तो अत्यंत दुस्साध्य है परंतु खैर! आप लोगोंका प्रवल आग्रह है तो तुम्हें उनसे मिलानेके लिये पूर्ण प्रयत्न करूंगा। परंतु आप लोग इसबातका अवश्य ध्यान रक्खें कि भगवान जिनेंद्रका दर्शन शायद ही आपकेलिये कल्याणकारी होगा क्योंकि वे आपके स्वामी राजा मकरध्वजका नाम तक भी सुनना पसंद नहिं करते। कदाचित् तुम्हें देखकर उनके मनमें तुम्हारे स्वामीके अहित करनेकी ठन गई तो घोर अनर्थका सामना करना पडेगा-लेनेके देने पड जांयगे।

राग द्वेष--प्रिय संज्वलन! यह सच ठीक है परंतु तुम हमारे मित्र हो। यदि तुम्हींसे हम विनती न करैं तो बताओ किसके पास जांय? इससमय हम आपके अभ्यागत हैं इसलिये आपको अवश्य हमारा निवेदन स्वीकार करना चाहिये। क्योंकि कहा है–

आओ आओ लो यह आसन मित्र! मिले क्यों बहुदिनसे।
क्या वृत्तांत? क्षीण अति क्यों हो? मैं प्रसन्न तुमदर्शनसे॥

ऐह्यागच्छ समाश्रयासनमिदं कस्माच्चिराद् दृश्यसे
का वार्ता अतिदुर्बलोऽसि च भवान् प्रीतोऽस्मि ते दर्शनात्।
एवं नीचजनोऽपि कर्तुमुचितं प्राप्ते गृहे सर्वदा
धर्मोयं गृहमेधिनां निगदितः प्राज्ञैर्लघुः शर्मदः॥

नीच मनुजका भी यह वर्तन घर आये अतिथीके संग ।
होता, कहा इसीसे लघु भी यह गृहस्थ वृष सुखका अंग ॥

अर्थात्-आओ यहां आओ, इस आसनपर बैठो ! बहुतकालके बाद आज क्यों दीखे हो ? क्या नवीन बात है ? इतने क्षीण कैसे होगये हो ? आज आपके देखनेसे मुझै नितांत आनंद हुआ है ऐसा नीच मनुष्य भी अपने घरपर आये हुये अभ्यागतसे कहता है इसलिये विद्वानोंने ऐसे वर्तावको गृहस्थियोंका कल्याणकारी धर्म बतलाया है । और भी कहा है-

ते धन्यास्ते विवेकज्ञास्ते प्रशस्याश्च भूतले ।
आगच्छंति गृहे येषां कार्यार्थं सुहृदो जनाः ॥

अर्थात्-जिनके घरपर किसी प्रयोजनकी सिद्धिकेलिये मित्र जन आवें वे संसारमें धन्य विवेकी और प्रशंसनीय गिने जाते हैं । इसलिये मित्र ! हमारे आनेसे आपको बुरा न मानना चाहिये ।

संज्वलन-भाई राग द्वेष ? इसमें बुरे माननेकी क्या बात है ? मैंने तो आपलोगोंके हितसे वैसा कहा था परंतु आपको वह बुरा लग गया । अच्छा आप लोग यहां आनंदसे रहैं । मैं महाराज जिनराजके समीप जाता हूं और उनसे पूछकर अभी आता हूं क्योंकि-

लभ्यते भूमिपर्यंतं समुद्रस्य गिरेरपि ।
न कथंचिन्महीपस्य चित्तांतं केनचित्कचित् ॥

अर्थात्-समुद्र और पर्वतकी तो थाह मिल जाती है परंतु राजाके चित्तकी थाह नहि मिलती ।

राग द्वेष-अच्छा आप जैसा उचित समझैं वैसा करैं और हमारा अपराध क्षमा करैं क्योंकि विना विचारे हमारे मुखसे वैसे वचन निकलगये हैं ।

संज्वलन--नहि भाई! इसमें अपराध क्षमा करानेकी क्या बात है? आपने तो गृहस्थ धर्मका स्वरूप बतलाया है भला आपके वचनोंसे मैं क्यों बुराई ग्रहण करूंगा?

इसप्रकार राग और द्वेषको समझाकर गुप्तचर संज्वलन भगवान जिनेंद्रके पास चलदिया और वहां जाकर उनसे बोला--

भगवन्! महाराज मकरध्वजके दो दूत आये हैं यदि श्रीमानकी आज्ञा हो तो वे सभामें लाये जांय?

जिनेंद्र--(हाथ उठाकर) अच्छा आज्ञा है उन्हें भीतर आने दो।

भगवान जिनेंद्रकी आज्ञा पाकर संज्वलन उन्हें लिवानेकेलिये जाता ही था कि बीचमें ही सम्यक्त्वने रोककर कहा--

संज्वलन! यह क्या करता है? अरे जहांपर निर्वेद उपशम मार्दव आदि वीर मोजूद हैं वहांपर क्या राग द्वेष आदिका आनेसे कल्याण हो सकता है?

संज्वलन--यह बात बिलकुल ठीक है अवश्य निर्वेद आदि प्रबल योधाओंकी मोजूदगीमें राग द्वेष आदिकी दाल नहिं गल सकती परंतु राग द्वेष भी तो जगत्प्रसिद्ध प्रबल सुभट हैं। और वे प्रबल सुभट न भी हों तथापि इससमय तो वे यहां दूतका काम करने आये हैं इसलिये (ऐसी दशामें) कुछ हानि नहि हो सकती और अच्छा बुरा विचारना भी इससमय अयुक्त जान पडता है।" संज्वलन और सम्यक्त्वका विवाद सुनकर महाराज जिनेंद्रने कहा--

"आप लोगोंका विवाद करना व्यर्थ है प्रातःकाल होते ही मैं राजा मकरध्वजको मय उसकी सेनाके यमलोकका मार्ग दिखला-

ऊंगा इसलिये राग और द्वेषके यहां आनेपर कोई हानि नहिं हो सकती-वेरोक टोक उन्हैं सभामें आने दो।" भगवान जिनेंद्रकी आज्ञासे संज्वलन चल दिया और उसने दोनों दूत सभामें लाकर उपस्थित करदिये।

महाराज जिनेंद्र उससमय उत्तम सिंहासनपर विराजमान थे, उनके शिरपर तीन लोककी प्रभुताको प्रकट करनेवाले तीन छत्र लटक रहे थे, चौसठ चमर ढुल रहे थे, और वे स्वाभाविक तेजसे अतिशय प्रतापी जान पडते थे इसलिये ज्योंही राग और द्वेषने उनकी ओर देखा वे थोडी देरकेलिये स्तब्ध रहगये। कुछ देर-बाद वडे साहससे उनमेंसे एक महाराज जिनेंद्रके पास गया और प्रणाम कर वोला-

भगवन् त्रिलोकविजयी महाराज मकरध्वजने यह आज्ञा दी है कि-तीन भुवनमें सार जो तीन रत्न आप हमारे भंडारसे ले आये हैं उन्हैं वापिस भेजदें? मुक्तिकन्याके साथ जो आपके विवाहका निश्चय होगया है. सो उसमें आपने मेरी आज्ञा क्यों नहिं ली? क्या त्रिभुवनविजयी चक्रवर्ती मुझ मकरध्वजकी आज्ञा विना मुक्तिकन्याके साथ कभी आपका विवाह हो सकता है? इसलिये यदि आप सुखसे रहना चाहते हैं तो मेरी आज्ञाका प्रतिपालन करैं। आप याद रखिये महाराज मकरध्वजकी सेवासे कोई पदार्थ अलभ्य नहिं हो सकता। क्योंकि-

कर्पूरकुंकुमागुरुमृगमदहरिचंदनादिवस्तूनि।
मदने सति प्रसन्ने भवंति सौख्यान्यनेकानि॥
धवलान्यातपत्राणि वाजिनश्च मनोरमाः।
सदा मत्ताश्च मातंगाः प्रसन्ने मदने सति॥

अर्थात् महाराज मकरध्वजके प्रसन्न होनेपर कपूर केसर अगर कस्तूरी मलय चंदन आदि अनेक पदार्थ सुखदेने लगते हैं किंतु विना उनकी प्रसन्नताके ये सब भयंकर संताप प्रदान करते हैं तथा श्वेत छत्र मनोहर घोडे और मत्तगज भी उन्हीं महाराजकी कृपासे प्राप्त होते हैं इसलिये राजन्! आपको हमारे स्वामी मकरध्वजकी अवश्य सेवा करनी चाहिये। आप राजा मकरध्वजको मामूली राजा न समझें क्योंकि उनकी प्रसिद्धि है कि—

जिसके सेवक देव असुरगण चंद्र सूर्य यक्षादिक हैं
गंधर्वादि पिशाच रक्षगण विद्याधर अरु किन्नर हैं।
नागलोकमें नागपती अरु स्वर्गमध्य सुरगणस्वामी
ब्रह्मा हरि हर अरु नृपती भी, ऐसा वह मन्मथ नामी॥[1]

अर्थात्—सुर असुर चंद्रमा सूर्य यक्ष गंधर्व पिशाच राक्षस विद्याधर किन्नर धरणेंद्र सुरेंद्र ब्रह्मा विष्णु महादेव और भी इनसे भिन्न नरेंद्र आदि राजा मकरध्वजकी सेवा करते हैं। इसलिये हमारी सम्मति है कि आप राजा मकरध्वजके साथ अवश्य मित्रता करलें क्योंकि वे महाबलवान हैं यदि उन्हें क्रोध आगया तो वे आपको कुछ भी न गिनेंगे। और भी--

राजन्! चाहें आप पाताल स्वर्ग और मेरुपर चले जांय, मंत्र औषध और शस्त्रोंसे भी रक्षा कर लें तथापि महाराज मकरध्वजके कुपित होनेपर आपकी रक्षा नहीं हो सक्ती क्योंकि उन्हों-

---

१ सेवा यस्य कृता सुरासुरगणैश्चंद्रार्कयक्षादिकैः
गंधर्वादिपिशाचराक्षसगणैर्विद्याधरैः किन्नरैः।
पाताले धरणीधरप्रभृतिभिः स्वर्गे सुरेंद्रादिकैः
ब्रह्माविष्णुमहेश्वरैरपि तथा चान्यैर्नरेंद्रैरपि॥

ने विना किसीकी सहायताके चर अचर समस्त लोकको छिन्न भिन्नकर वश कर लिया है । हजार उपाय करनेपर भी उनका कोई वाल भी वांका नहीं कर सकता और उनके भयसे समस्त लोक थर २ कांपता है । वे महाराज कालकूट-विषसे भी भयंकर विष हैं क्योंकि कालकूट उपायसे नष्ट भी किया जा सकता है परंतु उनका नाश होना दुस्साध्य है । पिशाच सर्प दैत्य ग्रह राक्षस भी उतना संताप नहिं दे सकते जितना वे संताप दे सक्ते हैं । जिससमय महाराज मकरध्वज अपने पैने तीरोंसे जीवोंके हृद-योंको भेदते हैं उससमय क्षणभर भी वे स्वस्थ नहिं रह सक्ते । जो मनुष्य उन (काम) की क्रोधाग्निसे जाज्वल्यमान रहते हैं वे जानकर भी कुछ जान नहिं सकते और देखकर भी देख नहिं सकते । चाहैं उन्हैं अगणित मेघमंडलसे सिंचित किया जाय, वहुतसे समुद्रोंसे न्हवाया जाय तथापि वे शांत नहि हो सक्ते । तभीतक मनुष्यकी प्रतिष्ठा रह सकती है तभीतक मन चंचलता छोड निश्चलता धारण करसकता है और समस्त तत्त्वोंके प्रकाश करनेमें अद्वितीय दीपक सिद्धांतसूत्र भी तभीतक हृदयमें स्फुरायमान रह सकता है जवतक समुद्रकी चंचल तरंगोंके समान चंचल युवतियों-के कटाक्षोंसे हृदय विद्ध नहिं होता-कामकी तीव्र वेदनाका सामना नहिं करना पडता । राजन् ! रमणियां उन महाराज (काम) की अनुपम शक्तियां हैं । विचार तो करो जिन युवतियोंकी पाद-ताडनं आदि चेष्टासे नासमझ कुरवक तिलक अशोक और माकंद तक विकृत हो जाते हैं उन स्त्रियोंके कोमल भुजलताओंके आलिं-गन आदि विलाससे, पूर्ण चंद्रमाके समान शुभ रससे आढ्य

मुख कमलके देखनेसे किस योगीको कामके आधीन नहिं होना पडता। हाव भावोंसे युक्त, कस्तूरीकी रचनासे भूषित और भ्रूविभ्रमसे मंडित कामिनियोंके मुखका दर्शन भी मनुष्योंके हृदयको कंपित कर देता है और धैर्यसे च्युत करदेता है। इसलिये अन विशेष कहना व्यर्थ है बस हमारा आग्रह है कि-यदि आप अपना कल्याण चाहते हैं तो महाराज मकरध्वजकी सेवा करैं क्यों व्यर्थ यहां मुक्तिकन्याके विवाहकेलिये लालायित हो रहे हैं!"

रागद्वेषकी उद्धता भरी इस वक्तृताको सुनकर भी जिनराजने शांत हो उत्तरमें कहा--

भाई! यह बात ठीक है परंतु तुम्हारा स्वामी मकरध्वज उच्च नहीं है हम कभी उसकी सेवा नहीं कर सकते क्योंकि--

वनेऽपि सिंहा मृगमांसभोजिनो वुभुक्षिता नैव तृणं चरंति।
एवं कुलीना व्यसनाभिभूता न नीचकर्माणि समाचरंति॥

अर्थात् जिसप्रकार अन्य पशुओंको मारकर मांसका भोजन करनेवाले सिंह वनमें रहकर भूख लगनेपर भी तृणभक्षण नहीं करते उसीप्रकार जो पुरुष कुलीन हैं वे आपत्तियोंके आनेपर भी नीच कर्मोंका आचरण नहिं कर सकते। और भी कहा है--

ययोरेव समं शीलं ययोरेव समं कुलं।
तयोर्मैत्री विवाहश्च न तु पुष्टविपुष्टयोः॥
ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं श्रुतं।
ययोरेव गुणैः साम्यं तयोर्मैत्री भवेद् ध्रुवं॥

अर्थात्--जे समान शीलवान समान कुलवान समान धनवान समान विद्वान और समान गुणवान होते हैं उन्हींकी आपसमें मित्रता होसकती है किंतु पुष्ट विपुष्ट--घडा और वटवृक्षके समान

छोटे वड़ोंमें मित्रता नहिं हो सकती। तुम्हारे स्वामी मकरध्वजमें और मुझमें किसी तरह भी साम्य नहि है। एवं जो तुमने हरि हरब्रह्मा आदिके विजयसे अपने स्वामीकी वीरता का गुण गान किया सो वे लोग विषयोंमें आसक्त हैं इसलिये उनका जीतना कठिन नहीं। मैंने विषयोंकी ओरसे सर्वथा अपनी दृष्टिको संकुचित करलिया है इसलिये तुम्हारा स्वामी मुझे जीत सकै यह वात तो दूर रहो मेरे पास तक भी नहि फटक सकता। भाई! जिन जिन वातोंमें तुमने अपने राजाकी प्रशंसा की है उन वातोंसे उसकी शूर वीरता नहिं जानी जासकती क्योंकि जो मनुष्य अत्यंत शूरवीर होते हैं वे नट भांड आर वैतालिकोंके समान किसीसे याचना नहिं करते परंतु तुम्हारा राजा मकरध्वज तो हमसे रत्नोंकी याचना करता है इसलिये तुम जाओ और उससे कह दो कि मैं इसरीतिसे उसै रत्न कभी वापिस नहिं करसकता किंतु—

रणमें मेरा कर विजय हरदेगा अभिमान।
रत्नाधिप होगा वही मम वैरी वलवान॥

अर्थात् युद्धकर संग्राममें जव मेरे घमंडको चकना चूर कर देगा तव ही वह मेरा शत्रु रत्नोंका स्वामी होगा अन्यथा नहीं। इसके सिवा जो तुमने भोगोंकी प्राप्तिका उल्लेख कर मुझे उनकी तरफ लोलुपी करनेका प्रयत्न किया है सो उनकी मैंने पहिलेसे ही जांच करली है वे परिपाकमें विरस और विनाशीक ठहर गये हैं देखो—

---

१ यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति।
यो मे प्रतिवलो लोके स रत्नाधिपतिर्भवेत्॥

धन-पैरकी धूलिके समान, यौवन-पर्वतकी नदीके वेगके समान, मानुष्य--जलकी बूंदके तुल्य, जीवन--फेनके समान, भोग स्वप्नमें देखेहुये पदार्थोंके समान और पुत्र स्त्री आदि तृणकी अग्निके समान चंचल और क्षणभरमें विनाशीक हैं, शरीर, रोगोंका घर है ऐश्वर्य-नाशशील, और जीवन मरणसे युक्त है। स्त्रियोंकी आशा नरकका द्वार दुःखोंकी खानि पापका कारण और कलहका मूल कारण है इसलिये. उनके आलिंगन आदिसे कैसे सुख मिल सकता है? अत्यंत क्रुद्ध और चंचल सर्पिणीका आलिंगन करना तो अच्छा परंतु नरकके साक्षात् द्वारभूत स्त्रियोंका आलिंगन हंसीमें भी करना अच्छा नहीं। मैथुन इंद्रायणके फलके समान पहिले पहिल अच्छा लगनेवाला परिपाकमें महाविरस और अत्यंत भय प्रदान करनेवाला है एवं अनंत दुःखोंका कारण है नरकका लेजानेवाला है। इसलिये दूतो! अधिक कहनेसे क्या? तुम अपने स्वामीसे कहदैना कि अव्याबाधमय सुखकी प्राप्तिकेलिये मैं अवश्य मुक्तिकन्याके साथ विवाह करूंगा और--

यंदि आवेगा नाथ तुम सहित मोह बल बाण।
तो यह निश्चित समझलो होगा वह गतप्राण॥

अर्थात् यदि तुम्हारा स्वामी मंत्री मोह बाण और सेनाको लेकर संग्राममें मुझसे लडने आवेगा तो तुम निश्चय समझलो वह अवश्य मारा जायगा।"

जिनराजके ऐसे वचन सुन राग द्वेष जलकर खाक होगये वे क्रोधांध हो बोले--

---

१ समोहं सशरं कामं ससैन्यं कथमप्यहं।
प्राप्नोमि यदि संग्रामे वधिष्यामि न संशयः॥

राजन्! क्यों इन दुर्वचनोंका प्रयोग करते हो ? याद रक्खो तभीतक तुम्हारा मन अव्यावाधमय सुख पानेकेलिये उथल पुथल कर रहा है जवतक उसपर महाराज मकरध्वजके तीक्ष्ण वाणोंकी वर्षा नहिं होती। क्योंकि-

प्रभवति मनसि विवेको विदुषामपि शास्त्रसंपदस्तावत्।
न पतंति वाणवर्षा यावत् श्रीकामभूपस्य॥

अर्थात् विद्वानोंके मनमें विवेक-हित अहितका ज्ञान और शास्त्रोंकी संपत्ति तभीतक स्थिर रह सकती है जवतक उनके मनपर महाराज मकरध्वजके तीक्ष्ण वाणोंका प्रहार नहिं होता।"

रागद्वेषको इसप्रकार सीमासे अधिक वोलता देख संयमको वडा बुरा लगा इसलिये उसने शीघ्रही राजा मकरध्वजकेलिये लिखकर एक पत्र दिया और उन्हें राजसभासे वाहिर कर दिया।

इसप्रकार श्रीठक्कुर माइदेवके पुत्र जिनदेवद्वारा विरचित संस्कृत मकरध्वजपराजयकी भाषावचनिकामें दूतविधिसंवाद नामक द्वितीयपरिच्छेद समाप्त हुआ॥ २॥

तृतीय परिच्छेद।

संयमद्वारा अपनेको अपमानित देख राग द्वेषको वडा कष्ट हुआ वे वहांसे चलकर शीघ्र ही महाराज मकरध्वजकी सभामें आये और स्वामीको प्रणामकर यथास्थान वैठगये। महाराज मकरध्वजको जिनराजके असली हाल जाननेकी भारी उत्कंठा लग रही थी इसलिये ज्योंही उन्होंने सभामें राग और द्वेषको देखा वे पूछने लगे-

"दूतो! तुम लोगोंने राजा जिनेंद्रके दरवारमें जाकर क्या कहा? राजा जिनेंद्रने क्या उत्तर दिया? और कैसी उनकी सैन्य सामग्री है?" उत्तरमें राग द्वेष बोले—

महाराज! राजा जिनेंद्रके विषयमें क्या पूछना है? वह शत्रुओंके सर्वथा अगम्य और प्रचंड शक्तिका धारक है इसलिये किसीको कुछ नहिं समझता। कृपानाथ! हमने राजा जिनेंद्रको शांतिका लोभ और दाम दंड और भेदका भी भय दिखलाया परंतु अपने ज्वलंत वलके घमंडसे उसने कुछ भी न गिना उल्टा यह और कहा-अरे! तुम्हारा स्वामी मकरध्वज महानीच है। हम कभी उसकी सेवा नहिं कर सकते देखते २ उसै मय सेनाके यमलोकका पथिक वनाया जायगा।"

मकरध्वज—अरे! यह क्या मिथ्या वोल रहे हो, क्या तुमलोग सेनाके वाहिर हो जो राजा जिनेंद्रके वैसे अहंकार परिपूर्ण वचन सुन तुमने जरा भी अपना पराभव न माना। तुम्हें उचित था कि वहीं अपने वलका कौशल दिखलाते।

राग द्वेष—कृपानाथ! जो पुरुष उन्नत होते हैं वे हीन पुरुषोंके सामने वलका कौशल नहिं दिखाते किंतु समान शक्तिवालेके ही सामने वे अपना पौरुष दिखाना अच्छा समझते हैं। इसलिये राजा जिनेंद्रके वैसे वचन सुनकर भी हमैं कुछ अपना पराभव न जान पडा क्योंकि कहा भी है—

तृणानि नोन्मूलयति प्रभंजनो मृदूनि नीचैः प्रणतानि सर्वतः।
समुच्छ्रितानेव तरून्प्रवाधते महान् महद्भिश्च करोति विग्रहं॥

अर्थात्—ऊंचे उठे हुये और कठोर ही वृक्षोंको आंधी उखा-

डकर फेंक देती है। कोमल और नींचे झुकेहुये तृणोंको नहीं इसलिये यह वात सिद्ध है कि वडोंका वडोंके साथ ही विरोध होता है। छोटोंके साथ नहीं, और भी कहा है--

गंडस्थलेषु मदवारिषु लौल्यलुब्ध-
मत्तभ्रमद्भ्रमरपादतलाहतोपि ।
कोपं न गच्छति नितांतवलोऽपि नागः
स्वल्पे वले न वलवान्परिकोपमेति ॥

अर्थात् मदके जलसे तलवतल गंडस्थलपर सुगंधिसे आये हुये उग्रभ्रमरोंसे पीडित भी प्रचंड शक्तिका धारक हाथी जरा भी कोप नहिं करता इसलिये स्पष्ट मालूम पडता है कि वलवान मनुष्य अल्प शक्तिके धारकपर क्रोध नहिं करते। कृपानाथ ! राजा जिनराज घमंडका तो पुंज है परंतु तुच्छ और थोडी शक्तिका धारक है इसलिये यदि उसकी सभामें हम अपने वलका परिचय देते तो अयुक्त होता।" इसप्रकार राग और द्वेषसे जिनराज का वृत्तांत सुनकर मकरध्वज जलकर खाक होगये। घृतकी आहुतिसे जिसप्रकार अग्निकी लौ और भी भयंकररूप धारण करलेती है उसीप्रकार दूतोंकी वातसे उनके हृदयमें क्रोधाग्नि अधिक भवकने लगी। उन्होंने शीघ्रही भेरीको वजानेवाले सेवक **अन्याय** को वुलाया और क्रोधसे लडखडाती हुई आवाजमें कहा "अन्याय ! शीघ्रही अनीतिरूपी भेरीको वजाओ जिससे मेरी सेना सजधजकर तयार हो जाय। देखो अभी जाकर राजा जिनेंद्रका घमंड चकना चूर करना है।" अपने स्वामी राजा मकरध्वजकी आज्ञा पाते ही अन्यायने वडे जोरसे अनीतिरूपी भेरी वजाई और उसका उग्र शव्द सुनकर राजा जिनेंद्रके पराजयार्थ

सैन्यमंडल संनद्ध होने लगा। अठारह दोष, तीन अज्ञान, सात व्यसन, पांच इंद्रियां, तीन दंड, तीन शल्य, दो आस्रव, चार आयु, दो गोत्र, दो वेदनीय, पांच अंतराय, पांच ज्ञानावरण, निन्यानवे नामकर्म, नौ दर्शनावरण, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, राग, द्वेष, असंयम, आशा, निराशा, मिथ्यात्व, सम्यङ्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिमिथ्यात्व आदि समस्त राजा और सुभट जो महा शूरवीर, शत्रुकुलके दर्पसंहारक थे देखते देखते सज धजकर तयार हो गये। समस्त देवोंके साथ इंद्रको और महादेव सूर्य चंद्रमा कृष्ण एवं ब्रह्मा आदिको भी अपने वश करनेवाला मोह वीर भी यमराजके समान शीघ्र ही तयार होगया और सबके सब अपने २ मुखोंसे घमंडके पुंजोंको उगलते हुये शीघ्र ही महाराज मकरध्वजके सामने जाकर उपस्थित हो गये। सेनाको इस प्रकार सजधजकर अपने सामने आते देख महाराज मकरध्वज बडे प्रसन्न हुये। उन्होंने आनंदसे मंत्री मोहका पट्टबंधन और तिलक पूर्वक पारितोषिक स्वरूप अनेक आभरण प्रदान करते हुये कहा—

"प्रिय मोह! अब तुम्हैं ही राज्यकी रक्षा करनी होगी। तुमही समस्त सेनाके अधिपति हो और तुम्हारे समान संग्राममें कोई प्रचंड शूरवीर नहि दीख पडता। क्योंकि देखो—

चंद्रके[1] विन यथा रजनी सर सरोजोंके विना
गंधके विन पुष्प अरु गजराज दांतोंके विना।

---

१ यद्वच्चंद्रमसा विनापि रजनी यद्वत्सरोजैः सरः
गंधेनैव विना न भाति कुसुमं दंतीव दंतैर्विना।
यद्वद्भाति सभा न पंडितजनैर्यद्वन्मयूखैरवि-
स्तद्वन्मोह! विना त्वया मम दलं नो भाति वीरश्रिया॥

पंडित जनोंके विन सभा विन किरणके सूरज यथा
शोभित न होता मोह ! मम दल तुम विना कुछ भी तथा ॥

अर्थात् जिसप्रकार विना चंद्रमाके रात्रि, विना कमलोंके सरोवर, विना गंधके पुष्प, विना दातोंके हार्थी, विना पंडितोंके सभा और विना किरणोंके सूर्य शोभित नहिं होता उसीप्रकार हे मोह ! विना तुम्हारे मेरा सैन्यमंडल भी शोभित नहिं होता । इसलिये मुझे अव पूर्ण विश्वास होता है कि मैं राजा जिनेंद्र का अवश्य पराजय करूंगा ।" इसप्रकार राजा मकरध्वज और मोहकी ये वातें चलही रही थी कि इतनेमें ही अपने प्रखर मद-जलकी धारासे पृथ्वीको तलबतल करते हुए गंडस्थलोंसे शोभित आठ मदरूपी आठ महागज और अनंत वेगका धारक, उन्नत, दुर्धर, चपल मनरूप अश्वोंका समूहभी सामने आकर उपस्थित होगया । एवं अनेक शूरवीर क्षत्रिय योधाओंसे भूषित, कुक-थारूपी विशाल दंडोंसे युक्त, दुष्ट लेश्यारूपी ध्वजाओंसे मंडित, जन्म जरा मरण रूप विशाल स्तभोंसे शोभित, मिथ्यादर्शन रूपीं अंवारीसे युक्त और पुद्गल आदि पांच द्रव्यरूपी शब्दोंसे मनुष्योंके कानोंको वधिर करनेवाले चतुरंग सैन्यसे परिष्कृत मनरूपी विशाल हस्तीपर सवार होकर राजा मकरध्वज जिनराजसे युद्ध करनेकेलिये चल दिये । इसीसमय महाराज मकरध्वजकी पक्ष-का एक, तीन मूढतारूपी राजाओं और शंका आदि आठ वीरोंसे मंडित संसार दंडको हाथमें लिये अपनी प्रचंड गर्जनासे दिशाओंको कंपायमान करनेवाला महावलवान मिथ्यात्व नामक मंडलेश्वर राजा भी आ पहुंचा और ज्योंही उसने महाराज मकर-

ध्वजको राजा जिनेंद्रसे युद्ध करनेके लिये प्रचंड सैन्यमंडलके साथ जाता देखा, शीघ्रही सामने उपस्थित होकर यह कहा—

"समस्त देवोंको अपने वश करनेवाले श्रीमहाराज! आप क्यों इतने विशाल सैन्यमंडलसे युक्त होकर अति अल्प शक्तिके धारक राजा जिनेंद्रके विजयके लिये जा रहे हैं? कृपाकर आप मुझे आज्ञा दें मैं अकेला ही आपके इस कार्यको कर सकता हूं।" मिथ्यात्वकी इस अहंकारपूर्ण बातको सुनकर मंत्री मोह से न रहा गया वह बोला "अरे मिथ्यात्व! क्यों वृथा आलाप कर रहा है? ऐसा कौनसा प्रचंड शक्तिका धारक मनुष्य है जो संग्राममें राजा जिनेंद्रके सन्मुख पड सकेगा? भाई! कल जिससमय राजा जिनेंद्रकी सेनाका अधिपति सामने आकर मोर्चापर डटैगा उससमय तुम्हारी शूरवीरताका पता लग जायगा। क्योंकि कहा है—

तावद्गर्जंति मंडूकाः कूपमाश्रित्य निर्भयाः।
यावन्नाशीर्विषो घोरः फणाटोपो न दृश्यते॥
तावद्विषप्रभा घोरा यावन्नो गरुडागमः।
तावत्तमःप्रभा लोके यावन्नोदेति भास्करः॥

अर्थात्—कूपमें बैठकर और निडर हो मैंढक तभी तक टर्राते हैं जबतक वे घोर एवं उग्र फणाके धारक आशीविष-सर्पको नहिं देखते। सर्पका भी विषप्रभाव तभी तक छाया रहता है जब तक गरुड आकर सामने नहिं डटता और अंध-कारका भी तभी तक साम्राज्य रहता है जब तक चम चमाते हुये सूर्यका उदय नहिं होता। इसलिये भाई! घबडाओ मत! प्रातःकाल ही तुम्हें यह पता लग जायगा कि राजा जिनेंद्र कैसा है!"

मंत्री मोहकी इस गर्हापूर्ण उक्तिको सुनकर मिथ्यात्वने कहा "अच्छा महाराज! आपसमें विशेष वादविवादकी आवश्यकता नहीं है। आप निश्चय समझिये जैसा मैंने हरिहर ब्रह्मा आदिका हाल किया है वैसा ही प्रभात होते ही यदि जिनेंद्रका न कर-डालूं तो अग्निमें जलकर भस्म हो जाऊंगा।"

इसप्रकार श्रीठक्कुर माइदेवके पुत्र जिनदेवद्वारा विरचित संस्कृत मकरध्वजपराजयकी भाषावचनिकामें मकरध्वजकी सेनाका वर्णन करने वाला तृतीयपरिच्छेद समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थ परिच्छेद।

राजसभासे दूतोंके चले जानेपर ही राजा जिनेंद्रने संवेगको अपने पास बुलाया और यह कहा—

"संवेग! शीघ्रही सेनाको युद्ध करनेकेलिये तैयार होनेकी सूचना दो। देखो! इसमें किसी तरहकी ढील न हो। अभी राजा मकरध्वजके साथ युद्ध करना होगा।" अपने महाराज जिनेंद्रकी आज्ञा सुनते ही संवेगने वैराग्यको जोकि भेरी बजानेवाला था अपने पास बुलाया और शीघ्रही भेरी बजानेकी आज्ञा दी।

सेनापति संवेगकी आज्ञासे वैराग्य आयुधशालमें पहुंचा और उत्साहके साथ जोरसे विरति नामकी भेरी बजाने लगा। उसका प्रचंड शब्द सुनते ही महाराज जिनेंद्रके समस्त सामंतगण बडे आनंदसे राजा मकरध्वजसे लडनेकालिये शीघ्र तयार होने लगे। उनमें दश धर्म, दश संयम, दश प्रायश्चित, आठ महागुण, बारह तप, पांच आचार, अट्ठाईस मूलगुण, बारह अंग, तेरह

चारित्र, चौदहपूर्व, नौ ब्रह्मचर्य, नौ नय, तीन गुप्तियां, पांच स्वाध्याय, चार दर्शन, तीन सौ छत्तीस मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, दो मनःपर्यय, छै अवधिज्ञान और केवलज्ञान आदि वडे वडे राजा थे जो कामदेवरूपी हस्तीकेलिये सिंहके समान, पूर्ण वलवान, शत्रुका मानमर्दन करनेवाले थे । इसके सिवा धर्मध्यानके साथ निर्वेग, शुक्लध्यानके साथ उपशम, अठारह हजार भेदरूप राजाओंसे मंडित राजा शील और पांच राजाओंसे युक्त राजा निर्ग्रंथ आकर सेनामें मिलगये एवं सवसे पीछे प्रचंड पराक्रमका धारक राजा सम्यक्त्व जो समस्त शत्रुरूपी हस्तियोंकेलिये सिंह था वडे २ इंद्र विद्याधर ब्रह्मा और चंद्रमा आदि भी जिसके चरणोंको नमस्कार करते थे और जो सदा कामका मददलन करनेवाला था सेनामें आकर मिल गया जिससे अतुल पराक्रमी समस्त सुभटोंके एक स्थानपर मिलजानेसे राजा जिनेंद्रका कटक अत्यंत शोभित होने लगा । उससमय सैन्यमंडलमें दुर्धर उन्नत दुर्जय और चपल मनको वश करनेवाले जीवके स्वाभाविक गुणरूपी तुरंगोंके खुरोंसे उठी हुई धूलिसे समस्त आकाशमंडल ढक गया था । प्रमाण और सप्तभंगरूप मत्तगजोंके चीत्कारसे दिग्गजोंको भय होरहा था । चौरासी लक्षणरूप विशाल रथोंका समुद्रकी गर्जनाके समान गंभीर शव्द होता था । स्याद्वादरूप भेरीकी गर्जनासे, पांच समिति और पांच महाव्रतके व्याख्यानके शव्दोंसे मनुष्योंके कान वधिर हो रहे थे- एक दूसरेकी वात तक नहिं सुनता था । आकाशपर्यंत लंवायमान शुभलेश्यारूपी दंडोंस पदपदपर राजा मकरध्वजको भय होरहा था । फैराती हुइ

लब्धिरूपी ध्वजावोंसे समस्त दिशायें आच्छन्न होगईं थीं और चारों ओर उग्र व्रतरूपी विशाल स्तंभ शोभा दे रहे थे। इस प्रकार चतुरंग सैन्यमंडलसे चौतर्फा मंडित, अनुप्रेक्षारूपी मजबूत कवचसे भूषित, शास्त्ररूपी निर्दोष मुकुटसे मंडित, सिद्धध्यान स्वरूप अमोघ तीक्ष्ण अस्त्रसे अलंकृत और समाधिरूप तलवारको हाथमें लिये हुये भगवान जिनेंद्र क्षायिकसम्यक्त्वरूप हाथीपर चढकर ज्योंही युद्धके लिये चले त्योंही अनेक भव्य जीव उनकी वंदना स्तुति करने लगे, अनेक मंगल गाने लगे, कई एक दयारूप आभरण दिखाने लगे और कोई २ मिथ्यात्वरूपी निंब निमक आदि उखाड उखाडकर फेकने लगे। इसके सिवा उससमय भगवान जिनेंद्रके आगे दधि, दूर्वा, अक्षत, जलभरित कलश, इक्षुदंड, कमल, पुत्रवती स्त्रियां, दक्षिणभागमें पंक्तिरूपसे खडी हुई कुमारियां, वामभागमें मेघ गर्जनाका और उन्नत साडोंका शब्द, दक्षिण भागमें मारो पकडो आदि महाशूरवीरोंके शब्द और जिस दिशामें जाना था उस दिशाका शांत हो जाना आदि अनेक उत्तमोत्तम शकुन हुये।

राजा मकरध्वजकी ओरसे संज्वलन नामका गुप्तचर भगवान जिनेंद्रके नगरमें रहता था और भगवान जिनेंद्रका कच्चा पक्का सब प्रकारका हाल राजा मकरध्वजके पास पहुंचाता था जिससमय उसने बडे ठाटबाटसे भगवान जिनेंद्रको राजा मकरध्वजसे युद्ध करनेकेलिये जाता देखा वह मनही मन इसप्रकार विचारकर कि 'अब मेरा यहां रहना ठीक नहीं' शीघ्र ही राजा मकरध्वजके पास पहुंचा और प्रणाम कर बोला—

"कृपानाथ ! अपने सम्यग्दर्शनरूप सुभटको आगेकर महा-तेजस्वी प्रचंडशक्तिके धारक राजा जिनेंद्र हम लोगोंके नाशके-लिये यहां आ रहे हैं इसलिये मैं तो किसी निरापद स्थानको जा रहा हूं क्योंकि यह बात प्रसिद्ध है कि "यदि एक ग्रामके त्यागसे किसी देशकी रक्षा होती हो तो उस ग्रामका, कुलके त्यागनेसे ग्रामकी रक्षा होती हो तो उस कुलका, किसी एक व्य-क्तिके त्यागसे कुलकी रक्षा होती हो तो उस व्यक्तिका और जिसपृथ्वीपर अपना रहना हो उस पृथ्वीके त्यागसे यदि अपनी रक्षा होती हो तो उस पृथ्वीका विद्वानोंको सर्वथा त्याग करदेना चाहिये । सो महाराज ! अब यहां मेरी रक्षा होनी कठिन है इसलिये इस पृथ्वीका त्याग ही मेरेलिये हितकारी होगा।"

संज्वलनकी इसप्रकार भीरुताभरी वाणी सुनकर मकरध्वजको बडा गुस्सा आया वह मारे क्रोधके ओठोंको डसता हुआ बोला—

संज्वलन ! ऐसे डरकी क्या बात है खबरदार ! यदि फिरसे ऐसा कहा तो समझलेना अभी मैं तुझै निश्शेष कर-डालूंगा । अरे !

दृष्टं श्रुतं न क्षितिलोकमध्ये मृगा मृगेंद्रोपरि संचलंति ।
विधुंतुदस्योपरि चंद्रमोर्कौ किं वै विडालोपरि मूषकाः स्युः ॥
किं वैनतेयोपरि काद्रवेयाः किं सारमेयोपरि लंबकर्णाः ।
किं वै कृतांतोपरि भूतवर्गाः किं कुत्र श्येनोपरि वायसाः स्युः ॥

अर्थात्—क्या कभी मृग सिंहोंपर, चंद्रमा और सूर्य राहु-पर, मूषे विलावपर, सर्प गरुडोंपर, शशा कुत्तोंपर, प्राणी यम-राजपर और पक्षी श्येन (बाज) पर भी कहीं आक्रमण करते

हुये देखे सुने गये हैं ? अरे ! क्या नृकीट, जिनराज भी विपुल शक्तिके धारक चक्रवर्ती मकरध्वजके वा उसके कुटुंवके ऊपर वार कर सकता है ? कभी नहीं" इसकेवाद मकरध्वजने मोहको अपने पास बुलाया और कहा-

"मोह ! यदि आज मैं राजा जिनेंद्रको संग्राममें न जीत लूंगा तो आज ही समुद्रमें जाकर वडवानलकेलिये अपने शरीरकी वलि दे दूंगा ! क्या जिनराज मेरे सामने भी कोई चीज है ?" उत्तरमें मकरध्वजकी प्रशंसा करते हुये मोह वोला-"कृपानाथ ! आप ठीक कह रहे हैं मैंने आज तक कोई ऐसा मनुष्य ही देखा सुना नहीं जो आपको जीतकर जयलक्ष्मी प्राप्त कर सुरक्षितरूपसे अपने स्थानपर लौट गया हो क्योंकि आपकी ख्याति है-

हरिहरपितामहाद्या वलिनोऽपि तथा त्वया प्रविध्वस्ताः ।
त्यक्तत्रपा यथैते स्त्रांके नारीं न कुर्वंति ॥

अर्थात्-वलवान हरिहर ब्रह्मा आदिको भी आपने अपना आज्ञाकारी वनालिया है इसीलिये निर्लज्ज हो उन्हें गौरी आदि स्त्रियां धारण करनी पडी हैं । तथा यह भी आप समझलें प्रथम तो राजा जिनेंद्र संग्राममें आपके सन्मुख पडेगा ही नहीं, कदाचित पड भी जाय तो उसे सांकलोंमें जिकडकर विचाररूप कैद खानेमें पटक दिया जायगा जिससे कि सर्वथा आपका सेवक हो जायगा ।" मंत्री मोहके इसप्रकार अनुकूल वचन सुनकर शीघ्र ही राजा मकरध्वजने वहिरात्मारूपी वंदीको वुलाया और उसे यह कहकर कि-" अरे वहिरात्मन् ? यदि तू मुझे राजा जिनेंद्रका साक्षात्कार करा देगा तो मैं तेरा असीम सन्मान करूंगा " अपने

नामसे अंकित एक कटिसूत्र (चंद्रहार) देकर शीघ्र ही राजा जिनराजके पास भेज दिया । वंदी भी स्वामीकी आज्ञा और सन्मानके प्रलोभनसे शीघ्र ही राजा जिनेंद्रके पास पहुंचा और प्रणाम कर बोला–

" राजन् ! चक्रवर्ती महाराज मकरध्वज मयचतुरंग सेनाके आ पहुंचे हैं। आपने यह अच्छा नहिं किया जो महाराज मकरध्वजके साथ युद्ध करनेका प्रण ठान लिया । महाराज ! क्या आप नहिं जानते? चक्रवर्ती मकरध्वजके सर्वत्र सेवक मौजूद हैं? कहीं आप चले जांय वच नहिं सकते। यदि आप यह चाहैं कि मकरध्वजसे छिपकर हम स्वर्ग चले जांय तो वहां महेंद्र आपको नहिं छोड सकता, यदि आप नरक जाय तो वहां फणींद्र आपको मार डालेगा अथवा यदि यह चाहैं कि आप समुद्रमें प्रवेशकर अपनी जान वचालें सोभी ठीक नहीं है क्योंकि समस्त समुद्रके जलको सुखाकर वहां भी मकरध्वज आपको प्राणरहित करदेगा। वस अधिक वोलनेसे क्या लाभ ? यदि आप संग्रामके अभिलाषी हैं तव तो आप चक्रवर्ती मकरध्वजके प्रचंड धनुषसे छोडी हुई वाण वर्षाको सहन करैं और यदि आपको संग्रामकी लालसा न हो तो उनका सेवक होना स्वीकार करैं और सुखसे रहैं । राजन् ! चक्रवर्ती महाराज मकरध्वजने अपने वीरोंकी नामावली मुझे दे कर यह पूछा है कि राजा जिनेंद्रकी सेनामें कौन तो इंद्रियोंका विजय करनेवाला वीर है और कौन दोष भय गौरव व्यसन दुष्परिणाम मोह शल्य आस्रव मिथ्यात्व आदिके जीतनेवाला सुभट है ? और भी जुदे जुदे वीरोंके नाम कहांतक गिनाये जाय जो

जो आपकी सेनामें वीर सुभट हों उनके नाम वतलाइये। अथवा महा-राज मकरध्वजको नमस्कार कीजिये।" वंदी वहिरात्माके इन कठिन वचनोंको सुन कर सुभट सम्यक्त्वको वडा क्रोध आया उसने वहिरात्माको ललकार कर कहा--

"रे वंदी! वृथा क्यों वक रहा है? जा, अपने स्वामीसे कहदे मैं (सम्यक्त्व) मिथ्यात्वसे युद्ध करूंगा, पंच महाव्रत पांच इंद्रियोंसे, केवलज्ञान मोहसे, शुक्लध्यान अठारह दोषोंसे, तप आस्रवसे, साततत्त्व सात भयोंसे, श्रुतज्ञान अज्ञानसे, प्रायश्चित तीनों शल्योंसे, चारित्र अनर्थदंडसे और दया सात व्यसनोंसे, युद्ध करेंगे अधिक कहांतक कहा जाय हमारे दलके लाखों नरेंद्र तुम्हारे दलके राजाओंके साथ युद्धार्थ सन्नद्ध वैठे हुये हैं।" जव सुभट सम्यक्त्व यह अपना वक्तव्य समाप्त कर चुका तो पीछे से भगवान् जिनेंद्रने कहा-

वंदी! यदि तू आज मुझे संग्राममें राजा मकरध्वजका साक्षात्कार करा देगा तो मैं तुझें अनेक देश मंडल अलंकार और छत्र आदि प्रदान कर दूंगा॥" उत्तरमें वंदीने कहा-

राजन्! यदि क्षणभर भी आप स्थिर रह सकेंगे तो मय मोहके राजा मकरध्वजको अवश्य देख सकेंगे।" वहिरात्माके अहंकारपरिपूर्ण वचनोंसे सुभट निर्वेगने क्रोधके आवेशमें आकर कहा-

"रे मूर्ख? क्यों इतने अहंकारके वचन वोल रहा है? याद रख! जरा भी अव कुछ कहा तो अभी तुझे यमलोकका मार्ग दिखलाऊंगा।" निर्वेगकी इस फटकारके उत्तरमें वंदी वोला-

वस निर्वेग ! वस ! अधिक न बोलो ऐसी किसमें सामर्थ्य है ? जो मुझे प्राणरहित करदे ?" वंदीके मुखसे इन वचनोंके निकलनेकी ही देरी थी कि निर्वेग देखते देखते उठकर खडा होगया और शिर मूडकर एवं नाक काटकर वंदी वहिरात्माको सभाभवनसे वाहिर निकाल दिया। निर्वेगके इस क्रूर वर्तावसे वहिरात्माको वडा क्रोध आया और वह यहकर कि—

"निर्वेग ! यदि मैं तुझे चक्रवर्ती मकरध्वजके हाथसे यम-लोकका पंथिक न वना दूं तो मुझे स्वामीका परमद्रोही ही सम-झना" शीघ्र ही राजा मकरध्वजके समीप चल दिया। वंदीको भयानक रूपमें आता देख राजा मकरध्वजकी सभाके मनुष्य 'अरे वंदी ! तेरा क्या होगया ?' कहकर अट्टहास्य करने लगे। उत्तरमें चिढकर वंदीने कहा—

हंसते क्या हो ? इससमय मेरी जैसी अवस्था हुई है थोडी देरवाद आपकी भी ऐसी ही होजायगी क्योंकि यह नियम ह जिस कार्यका जेसा प्रारंभ होता है उसीके अनुसार वह समाप्त होता है आगे होनेवाले कार्यके शकुन वहुत खराव हुये हैं इस-लिये यह कार्य निर्विघ्नरूपसे समाप्त हो सकैगा यह निश्चयसे नहिं कहा जा सकता। अव यदि शक्ति है तो युद्ध करिये अन्यथा स्वदे-शका परित्यागकर विदेशका आश्रय लीजिये।" वंदीके ऐसे वचन सुन राजा मकरध्वजने पूछा—

भाई वंदी! राजा जिनेंद्रका क्या मंतव्य है ? क्या वह कहता है ? सो तो कहो। उत्तरमें वंदी वोला—

स्वामिन् ! क्या देखकर भी नहिं देखते हो ! कृपानाथ !

कोऽस्मिल्लोके शिरसि सहते यः पुमान् वज्रघातं
कोऽस्तीदृग्यस्तरति जलधिं बाहुदंडैरपारं।
कोऽस्त्यस्मिन् थो दहनशयने सेवते सौख्यनिद्रां
ग्रासैर्ग्रासैर्गिलति सततं कालकूटं च कोऽपि॥
संतप्तं रससायसं पिबति कः को याति कालगृहं
को हस्तं भुजगानने क्षिपति वै कः सिंहदंष्ट्रांतरे।
कः शृंगं यममाहिषं निजकरे उत्पाटयत्याशु वै
कोऽस्तीदृक् जिनसन्मुखो भवति यः संग्रामभूमौ पुमान्॥

अर्थात्—जिसप्रकार शिरमें वज्रका प्रबल आघात सहना, भुजाओंसे विशाल समुद्रका तरना, अग्निशय्यापर लेटकर सुखसे निद्रा लेना, हलाहल विषका ग्रास ग्रासरूपसे निगलना, अत्यंत संतप्त लोहके रसका पीना, यमराजके घरका जाना-मरना, भयंकर सर्पके मुखमें और सिंहकी डाढों तले हाथका देना और अपने हाथसे यमराजके भैंसेका सींग उखाडना असाध्य है-महासाहसी भी पुरुष इन बातोंको नहिं कर सकता उसीप्रकार ऐसा भी कोई मनुष्य नहीं जो रणभूमिमें राजा जिनेंद्रके सामने ठहर सकै इसलिये कृपानाथ! राजा जिनेंद्रको आप मामूली राजा न समझें अचिंत्य शक्तिका धारक वह वीरोंका शिरताज है। आपके लिये जो उसने कहा है उसके पुनः कहनेसे शरीर कंपायमान होता है इसीलिये मैं उन वचनोंका पुनः प्रतिपादन नहिं कर सकता।" राजा मकरध्वजने ज्योंहीं इसप्रकार बहिरात्माके वचन सुने मारे क्रोधके उनके नेत्र लाल होगये, मुख काला पड गया, शरीर थर थर कांपने लगा, कल्पांतकालमें जिसप्रकार सीमाका उलंघनकर समुद्र आगे

बढजाता है राहु और शनीचर सहसा उदित होजाते हैं एवं विकराल पावककी ज्वाला तीव्ररूपसे वढ निकलती है उसीप्रकार राजा मकरध्वज शीघ्र ही जिनराजकी ओर चल पडा । वह थोडी ही दूर पहुंचा था कि इतनेमें ही मार्गमें सूखे वृक्षपर रोता हुआ काक, पूर्व दिशाको बहुतसे काकोंकी पंक्तिका जाना, सीधी ओरसे वाही ओर सर्पका चला जाना, अग्निका लग जाना, गधा और उल्लूके निंदित शब्दोंका होना, शूकर शशा गोहका सामने दीखना, शृंगालोंके भयंकर शब्द सुनना, कान फटफटाते हुये कुत्तेका देखना, सामने रीता घडा पडना, अकालवर्षा, भूमिका कपना और उल्कापात आदि महानिकृष्ट अपशकुन हुये। अपशकुनोंका वैसा होना देख यद्यपि मित्रवर्गने राजा मकरध्वजको संग्रामसे बहुत रोका परंतु उसने किसीकी भी नहिं सुनी वह चलता ही चला गया । जिससमय राजा मकरध्वजकी सेना चली उससमय दिशा चल विचल हो उठी, समुद्र खलवला उठा, पातालमें शेषनाग कंपित होगया, पृथ्वी घूम निकली, और सर्प विष उगल निकले । उससमय पवनके समान शीघ्रगामी अश्वोंसे, मत्त हाथियोंसे, ध्वजा चमर और शस्त्रोंसे समस्त आकाश आच्छन्न होगया और पटह मृदंग और भेरीके शब्दोंसे तीनों लोक शब्दायमान होगये । अश्वोंकी टापोंसे उडे हुये रजसे और छत्रोंसे गगन मंडल ढक गया । शूरवीरोंसे पृथ्वी व्याप्त होगई । रथोंके और मारो पकडो आदि वीरोंके भयंकर शब्दोंसे एक सैनिक दूसरेकी बात भी न सुन सकता था । जिनराज और कामदेवकी सेनाका संज्वलनने ज्योंही भयंकर कोलाहल सुना वह मनमें विचारने लगा—

"अरे ! यह कामदेव बडा मूर्ख है जो राजा जिनेंद्रके बल-को बलवान भी देखकर आगे ही बढता चलता जाता है क्या करूं क्या न करूं ! अथवा ठीक है-

जिसप्रकार भुजंगोंको दूध पिलानेसे भी विषहीकी वृद्धि होती है उसीप्रकार उत्तम भी उपदेश मूर्खोंको शांति न कर क्रोध ही उत्पन्न करता है। जिसप्रकार नकटे मनुष्यको विशुद्ध भी दर्पणके देखनेसे क्रोध ही उपजता है उसीप्रकार उत्तम भी उपदेश मूर्खको क्रोध ही उत्पन्न कराता है ॥

यद्यपि मूर्ख मनुष्यके साथ बात चीत करनेसे वचनोंका व्यर्थव्यय, मनको संताप, दंड और निंदा इन चार कष्टोंका सा-मना करना पडता है तथापि यह राजा मकरध्वज मेरा स्वामी है इसलिये अवश्य इससे कुछ न कुछ कहना चाहिये।" बस ऐसा अपने मनमें पूर्ण विचारकर गुप्त चर संज्वलन शीघ्र ही राजा मकर-ध्वजके सामने आया और प्रणामकर कहने लगा—

'कृपानाथ ! आप क्यों यह व्यर्थ आडंबर कर रहे हैं महाराज जिनेंद्र अचिंत्य शक्तिका धारक है आप उसे वश नहिं करसकते।' संज्वलनकी इस प्रार्थनाको सुनकर मकरध्वज फिर बोला--

रे मूढ ! क्षत्रियोंका जीवन आडंबरके लिये बतलाता है ! अरे जिसका जीवन शौर्य विज्ञान आदि गुणोंसे युक्त हो वही सार्थक है किंतु काकके समान केवल पेट भर लेना क्षत्रियोंका जीवन नहीं। मैं क्षत्रिय हूं मेरा जीवन उसीसमय सार्थक हो सकता है जब कि मैं राजा जिनेंद्रका विजयकर जय-लक्ष्मी प्राप्त करलूंगा। मूर्ख! मैं कभी तेरी बात मान नहिं सकता

क्योंकि एक तो तू राजा जिनेंद्रके साथ युद्ध करनेको आडंबर वत-ला मुझे साहसच्युत करना चाहता है। दूसरे तू भंडारसे रत्न चुराकर ले गया था, तीसरे इससमय राजा जिनेंद्रकी ओरसे दूतका काम कर रहा है और चौथे शत्रु जिनेंद्रसे भयभीत हो पीठ दिखाकर यहां आया है! तू निश्चय समझ, मुक्ति वनिताकेलिये आडंबरके करनेमें भी मुझे लज्जा नहीं। सुन! यदि कदाचित् मैं राजा जिनेंद्रको संग्राममें पकड लूंगा तो जैसा मैंने सुरेंद्र नरेंद्र एवं फणींद्र आदिका हाल किया है वैसा ही उसका करूंगा। राजा जिनेंद्र, वहुत दिनसे अपने गृहके भीतर वैठकर गर्जना कर रहा था आज वडी कठिनतासे मेरे जालमें फसा है। देखता हूं अव कहां भागकर जाता है। याद रख जवतक मैं क्रुद्ध नहिं होता तभी तक शूरवीरता ज्ञान प्रतिष्ठा शील संयम आदि स्थिर रह सकते हैं किंतु मेरे क्रुद्ध होते ही इनका पता तक नहिं चलता।" इसप्रकार महाराज मकरध्वज संज्वलनके सामने अपनी प्रशंसा कर ही रहे थे कि वीचमें ही वंदी वहिरात्मा नम्रभावसे वोला—

"कृपानाथ! यह समय प्रशंसा करनेका नहीं है! जरा चल कर देखिये। महाराज जिनेंद्र अपने प्रवल सैन्यदलसे मंडित हो संग्रामकेलिये तयार खडे हैं। जिसके हाथमें चमचमाता हुआ खड्ग दीख रहा है वह सुभट शिरोमणि सम्यक्त्व है। जो नि-र्भयरूपसे सामने खडा हुआ है वह दुर्जय वीर तत्त्व है। इधर ये पंच महाव्रत नरेश्वर खडे हुये हैं। ये समस्त जगतको अपने वश करनेवाले राजा ज्ञान उपस्थित हैं और यह शत्रुओंकेलिये सा-क्षात् यमराजस्वरूप संयम सुभट खडा हुआ है।" इसप्रकार

बहिरात्मा, इधर तो मकरध्वजको जिनराजकी सेनाके वीरोंका परिचय करा रहा था और उधर मकरध्वजकी सेना आगे बढी एवं दोनों सेनाओंकी आपसमें मुठभेड होगई। संग्रामके अभिलाषी वीरोंके तीर भाले फरसा गदा मुद्गर नाराच भिंडिमाल हल मूसल शक्ति तलवार चक्र वज्र आदि शस्त्रोंसे एवं इनके सिवाय और भी दिव्य शस्त्र अस्त्रोंसे घोर युद्ध होना प्रारंभ होगया। उससमय बहुतसे सुभट निःशेषप्राण हो गिर गये, बहुतसे मूर्छित होगये और किसीरीतिसे मूर्छाके दूर होजानेपर भूमिका सहारा लेकर वहीं पडे रहगये। बहुतोंका हंसना बंद हो गया। अनेक निर्भय हो आगे बढने लगे। कई संग्रामसे भीत हो कातर होगये। अनेकोंने शस्त्रोंके तीक्ष्ण आघातसे वीरगतिका लाभ किया। बहुतसे धीरवीर शस्त्रोंके घातोंसे शरीरके अवयवोंके छिन्न भिन्न होजानेपर भी बराबर धीरतासे शत्रुओंके साथ युद्ध ही करते रहे। अनेक चरण भुजा आदिके कट जानेके कारण रुधिरधारासे तलवतल होगये, इस लिये उससमय वे पुष्पितपलाशकी तुलना करने लगे और बहुत से शिरोंके कट जानेसे राहुके समान जान पडने लगे इसलिये जिससमय वे युद्ध कर रहे थे उससमय ऐसा जान पडने लगा मानो साक्षात् अनेक राहु सूर्योंके साथ युद्ध कर रहे हैं। बस जिससमय युद्धका यह भयंकर रूप हो रहा था उससमय राजा जिनेंद्रके अग्रभागमें रहनेवाले वीर दर्शनका और मिथ्यात्वका आपसमें भिडाव होगया एवं अपने प्रचंड पराक्रमसे मिथ्यात्वने देखते २ संग्राममें दर्शनका मानभंग कर दिया। दर्शनवीरका मान भंग

होते ही मेद मांस आदि रूप कीचडसे और रुधिररूपी जलसे भरित, अश्वोंके खुररूपी सीपोंसे आछन्न, वीरोंके मुकुटोंमें लगे हुये मोती और महारत्न रूपी रत्नोंके आकर, मिथ्यात्वरूपी प्रचंड वडवानलसे संदग्ध, तलवार छुरी आदि रूप मीनोंसे अभिव्याप्त, केश स्नायु यंत्ररूपी शेवालसे पूर्ण, घायल हो जमीनपर गिरे हुये हाथियोंके शरीररूपी जहाजोंसे भूषित और अस्थिरूपी शंखोंसे व्याप्त राजा जिनेंद्रका सैन्यरूपी समुद्र खलबला उठा।

कामदेव और भगवान जिनेंद्रके सैन्यका युद्ध आकाशमें बैठकर इंद्र और ब्रह्मा भी देख रहे थे। मिथ्यात्वसे ताडित जिस-समय भगवान जिनेंद्रका सैन्य चारो ओरसे नष्ट होने लगा—मार्ग छोड कुमार्गकी ओर झुकने लगा और कोई मिथ्यात्वका तो कोई अन्यका शरण टटोलने लगा तो उससमय ब्रह्माने इसप्रकार इंद्रसे कहा—

इंद्र! जबतक निर्वेगके साथ सम्यक्त्ववीर मिथ्यात्वका आ-कर सामना न करेगा तबतक जिनेंद्रकी सेनामें शांतिका प्रसार होना कठिन है। अच्छा, जरा थोडी देरकेलिये तुम इसीप्रकार स्थिररूपसे बैठे रहना। मैं अभी निश्शंका शक्तिसे मिथ्यात्वके सै-कडों खंड किये डालता हूं। परंतु भाई! कदाचित् मैंने मिथ्या-त्वको मार भी डाला तो इसके पीछे मोह मल्ल आवेगा उसका सामना कौन करेगा? मेरी समझमें ऐसी किसीमें शक्ति नहीं है जो मोह सुभटको जीत सकै। क्योंकि कहा भी है—

न मोहाद्बलवान् धर्मो तथा दर्शनपंचकं।
न मोहाद् बलिनो देवा न मोहाद्बलिनो नराः॥

न मोहात्सुभटः कोऽपि त्रैलोक्ये सचराचरे।
यथा गजानां गंधेभः शत्रूणां स तथैव सः॥

अर्थात्—मोहसे वलवान संसारमें न धर्म है न दर्शन है न देव और मनुष्य हैं और न उसके बरावर कोई सुभट है। विशेष कहां तक कहा जाय जिसप्रकार गजोंमें गंधगज वलवान गिना जाता है उसीप्रकार शत्रुओंमें सबसे वलवान मोह शत्रु है।

इंद्र ब्रह्माकी बातपर कुछ हंसकर बोला-'नहिं ब्रह्मा! तुम्हारा कहना यथार्थ नहीं। तुम निश्चय समझो मोहका तभीतक पौरुष है जबतक केवलज्ञानरूपी प्रचंड सुभट उसके सामने आकर नहिं डटता। क्योंकि कहा भी है—

तावद्गर्जंति फूत्कारैः काद्रवेया विषोत्कटाः।
यावन्नो दृश्यते शूरो वैनतेयः खगेश्वरः॥

अर्थात् विषसे उत्कट सर्प तभीतक फुंकार सकता है जवतक उसके मानको मर्दन करनेवाला गरुडपक्षी आकर सामने उपस्थित नहिं होता।

ब्रह्मा—खैर भाई इंद्र! कदाचित् वीर केवलज्ञानने मोहको पछाड भी मारा तो कामदेवके मनरूपी मतंगका कौन सामना करैगा? किसीमें भी सामर्थ्य नहीं है कि सपाटेसे रूरते हुये मनरूपी मतंगको कोई रोक सके। इसलिये राजा जिनेंद्रने जो कामदेवके साथमें युद्ध ठाना, यह वडा अनुचित किया। भाई! राजा कामदेवके पौरुषको हमलोग तो खूब देखे सुने और अनुभव किये बैठे हैं अरे! जिनको राजा कामदेवने वश किया है उनका मैं खुलासारूपसे क्या नाम बतलाऊँ तथापि मैं अपवीती एक कथा सुनाता हूं। सुनो—

एकदिन शंकर विष्णु और हमने युद्धमार्गसे कामदेवको पराजित करनेका विचार किया इसलिये हम तीनों मिलकर उससे युद्ध करनेकेलिये चलदिये। हममेंसे महादेवने कहा-अरे! मेरा नाम मदारि-कामका वैरी है समस्त संसार मुझै इस ही नामसे पुकारता है इसलिये काम मेरा क्या करसकता है?" बस महादेवके वचनसे हमैं भी अहंकार होगया और आगे आगे महादेव और पीछे पीछे हम तीनों मिलकर कामके घरकी और चलदिये। ज्योंही महादेव कामके घर पहुंचे और दोनोंका आपसमें साक्षात्कार हुआ कामने एक ऐसा वाण तककर मारा जो महादेवके वक्षस्थलमें लगा और उसकी भयंकर चोटसे मूर्छित हो वे धराशायी हो गये। वहांपर राजा हिमालयकी पुत्री पार्वती मौजूद थी ज्योंही उसने महादेवकी वैसी दशा देखी शीघ्र ही उनके पास आई अपने अंचलसे हवा ढोलने लगी एवं अपने मंदिरमें लाकर शीतल जलके छींटे मारकर उन्हैं होशमें लाई। पश्चात् कामके वाणसे पीडित होकर उन्होंने पार्वतीको स्वीकार कर लिया और उसै अपना आधा अंग बनाकर अर्धनारीश्वरकी ख्याति लाभकी। विष्णुको भी दो वाण मारकर कामदेवने जमीनपर गिरा दिया। ज्योंही यह बात कमलाने सुनी वह दौडती २ कामदेवके पास आई और उसके पैरोंमें गिरकर 'हे देव? मुझै पतिभिक्षा प्रदानकर अनुगृहीत कीजिये। मुझै विधवा न बनाइये ऐसा निवेदन कर विष्णुको अपने घर ले आई और अनेक उपचार कर उन्हें बचा लिया जिसके कारण कामवाणोंसे पीडित विष्णुने कमलाको अपने वक्षस्थलमें रखलिया और उसदिनसे उनकी कमलापतिके नामसे संसारमें प्रसिद्धि हुई।

विष्णुके समान कामने मुझे भी अपने दो बाणोंसे घाय-लकर दिया उससमय रिम्भा-रंभा मेरे पास न थी। पीछेसे वह मेरे पास आई। उसने मुझे जिलाकर बडा उपकार किया जिससे मैंने उसे अपनी स्त्री बना लिया। प्रिय इंद्र! तुम विद्वान और योग्य पुरुष हो इसलिये तुम्हें यह असली हाल बतला दिया गया है। मूर्खोंके आगे यह हाल कहना अधिक हानिकारक है क्योंकि ऐसा हाल सुनकर वे हँसना ही अपना परम महत्त्व समझते हैं। अच्छा! अब तुम्हीं बताओ जब हम सरीखे बलवान देवोंका भी कामदेवने यह बुरा हाल करडाला तब जिनेश्वरको वह कब छोड सकता है? जिनेश्वर भी तो देव ही कहा जाता है!

इंद्र—भाई ब्रह्मा! तुम्हारा कहना कदाचित् सत्य हो। परंतु देव होनेपर भी जिनराजमें बडा अंतर है। क्योंकि—

गोगजाश्वखरोष्ट्राणां काष्ठपाषणवाससां।
नारीपुरुषतोयानामंतरं महदंतरं॥

अर्थात् गाय हाथी घोडा गधा ऊटोंमें, काष्ठ पत्थर वस्त्रोंमे और नारी पुरुष और जलमें अंतर ही नही बडा भारी अंतर है और भी कहा है—

मीनं भुक्ते सदा शुक्लपक्षौ द्वौ गगने गतिः।
निष्कलंकोऽपि चंद्रस्य न याति समतां बकः॥

अर्थात् जिसप्रकार चंद्रमा मीन (राशिविशेष) का धारक शुक्लपक्षका धारण करनेवाला आकाशमें चलनेवाला और निष्कलंक है उसीप्रकार यद्यपि बगला भी मीन (मछली) का खानेवाला शुक्लपक्ष (पांख) धारण करनेवाला आकाशमें चलनेवाला और

निष्कलंक है तथापि वह कदापि चंद्रमाकी तुलना नहिं करसकता इसलिये अपने समान देव मानकर जिनराजके विषयमें जो यह कहा हैं कि कामदेव हमारे समान उनका वडा वुरा हाल करैगा, आपकी भूल है। क्योंकि देव होनेपर भी जिनराज आपके समान चंचल नहीं वह महाधीर वीर है समस्त व्यसनोंसे रहित है। जीतना तो दूर रहो कामदेव उसका वाल भी वांका नहिं करसकता॥

इसप्रकार आकाशमें तो ब्रह्मा और इंद्रका यह वाद विवाद हो रहा था और उधर वीर सम्यक्त्व सैन्यमंडलमें आ कूदा एवं अपनी सेनाको छिन्न भिन्न देख पासमें आकर उच्च स्वरसे वोला—

"भाइयो! डरो मत मैं आगया। अव तुम्हारा कोई कुछ नहिं करसकता।" इसके वाद जिनेंद्रकी ओर मुडकर वडे अभिमानसे यह प्रतिज्ञाकी कि—

"भगवन्! यदि मैं आज मिथ्यात्वको रणमें न छिन्न भिन्न कर डालूं तो जो पुरुष चामके पात्रोंमें रक्खेहुये घी तेलके खानेवाले हैं, क्रूरजीवोंके पोषक, रात्रिभोजी, व्रत और शीलोंसे रहित, निर्दयी, गेहूं तिल आदि हिंसाजनक पदार्थोंके संग्रह करनेवाले, जूआ आदि सात व्यसनोंके सेवक, कुशील और हिंसाके प्रेमी, जिनशासनकी निंदा करनेवाले, क्रोधी कुदेव और कुलिंगधारियोंके भक्त, आर्त और रौद्रध्यानके धारक, असत्यवादी, सदा दूसरोंकी चुगली करनेवाले, ऊमर कटूमर आदि पांचों उदंवरोंके भक्षक, और महाव्रतको धारण कर फिर उसे छोडनेवाले हैं उनके समान पातकी समझा जाऊं।" इसके वाद संग्राममें जा उसने मिथ्यात्व सुभटको ललकार कर कहा—

"रे मिथ्यात्व ! अब मैं आगया तेरी करणीका तुझे अभी फल मिला जाता है। मैं अभी तेरे मान मतंगको खंड २ किये डालता हूं।" सम्यक्त्वकी यह गर्जना सुन मिथ्यात्वने उत्तर दिया-

"अरे सम्यक्त्व ! जा ! जा !! क्या तेरा मरण बिलकुल समीप आचुका है जो तू यह बात कहरहा है ? जानता है मेरा नाम मिथ्यात्व है। याद रख ! जैसा मैंने दर्शनको अभी आपत्तिके जालमें फँसाया है और उसै रण छोडकर भागना पडा है यदि तेरा भी वैसा हाल न करूं तो मुझे स्वामी मकरध्वजका सेवक न समझ द्रोही समझना।"

सम्यक्त्व-अरे नीच ! वृथा क्यों गाल बजाता है। यदि तुझमें शक्ति है तो उसै दिखा । शस्त्र छोडकर मुझपर वारकर"

बस सम्यक्त्वका इतना कहना ही था कि मिथ्यात्वने शीघ्र ही तीन मूढतारूप बाणोंकी वर्षा करनी शुरू करदी। सम्यक्त्व भी कुछ कम न था उसने भी षट् अनायतन बाणोंसे मिथ्यात्वके बाणोंको बीचमें ही खंडित कर डाला । इसके बाद मिथ्यात्वने क्रोधके आवेशमें आकर शंकारूपी शक्तिको जो कि राजा कामदेव के भुजबलसे कमाये हुये धनकी रक्षा करनेवाली सर्पिणी, शत्रु राजाकी सेनाके भक्षण करनेवाली यमराजकी जिह्वा, क्रोधरूपी भयंकर अग्निकी ज्वाला और विजय लक्ष्मीके वश करनेकेलिये चलने फिरनेवाली मूर्तिमती मंत्र सिद्धि जान पडती थी, वीर सम्यक्त्वपर छोड दी । सम्यक्त्व भी तयार बैठाथा ज्यों ही उसने शंका शक्तिको अपनी ओर आता देखा अपनी प्रबल निश्शंका शक्तिसे उसै बीचमें ही छिन्न भिन्न कर डाला । जब मिथ्यात्व

ने कांक्षा आदि ओर भी अनेक तीक्ष्ण शस्त्रोंका प्रहार किया तो सम्यक्त्वने निष्कांक्षित निर्विचिकित्सा आदि विरोधी उनके शस्त्रोंसे उनका परिहार कर अपनी रक्षाकी। इसप्रकार भयंकर और समस्त लोकको आश्चर्य करानेवाले युद्धके होनपर भी उनमेंसे जब किसी की भी हार जीत न हुई तब सम्यक्त्वने यह विचारकर 'कि अब क्या करना चाहिये! यह भी परम बलवान योधा है सामान्य शस्त्रसे इसका वश होना कठिन है' युद्धका कौशल दिखलानेके लिये शीघ्र ही अपने अमोघ परमतत्त्वरूप खड्गको हाथमें लेलिया ओर उसे फेंक कर देखते देखते ही मुख्य सुभट मिथ्यात्वको जमीनपर गिरा दिया। बस इधर तो मिथ्यात्वकी यह दशा हुई और उधर राजा कामदेवके कटकमें भिर्रा पडगया। जिसप्रकार सूर्यके भयसे अंधकार, गरुडके भयसे सर्प, सिंहके भयसे हाथी आदि जहां तहा दौडते फिरते हैं उसीप्रकार सम्यक्त्वके भयसे शत्रुपक्षके सुभट जहां तहां दौडने लगे। उससमय यह देखकर आकाशमें जो इंद्र और ब्रह्मा बेठे थे वे परस्पर बार २ यह कहकर कि 'देखो सम्यक्त्वसे कामदेवकी सेनामें केसा भिर्रा पडगया?' सम्यक्त्वकी प्रशंसा करने लगे और राजा जिनेंद्रकी सेनामें जहां तहां आनंदसे जय जय' ही शब्द सुने जाने लगे। अपनी सेनाका यह हाल बेहाल देख कामदेव बडा ही घबडाया और उसने शीघ्र ही मंत्री मोहको अपने पास बुलाकर इसका कारण पूछा उत्तरमें मोहने कहा-

कृपानाथ! हमारी सेनाका मुख्य सुभट जो मिथ्यात्व था उसे जिनराजके सुभट सम्यक्त्वने धराशायी बना दिया है इसलिये हमारी सेनाके पैर उठ गये हैं-वह इधर उधर भागती फिरती है

और शत्रुपक्षमें 'जय जय' का उन्नत कोलाहल हो रहा है।"

राजा मकरध्वज और मोहकी तो आपसमें इधर यह बात होरही थी और उधर सुभट मिथ्यात्वकी स्त्री नरकगति वैतरणी नदीमें आनंदसे क्रीडा कर सात नरकरूप सतखने मकानमें बैठी चैनकी गुड्डी उडा रही थी कि अचानक हीं उसके पास नरकगत्यानुपूर्वी नामकी सखी पहुंची और वह इसप्रकार बोली—

"सखी! क्या तुमको कुछ समाचार नहिं मिला है जो वडे आनंदसे बैठी हुई मौजके श्वांस ले रही हो। अरे तुम्हारे भाग्यका सितारा जीवनसर्वस्व सुभट मिथ्यात्व यमराजकी गोदका खिलौना होगया।" वस इतना सुनना ही था कि आंधीसे कपाये गये केलाके वृक्षके समान रमणी नरकगति वेहोश हो जमीनपर गिर पडी। नाना उपचारोंके करनेसे थोडी देर वाद जव उसकी चेतना वापिस लौटी तो वह रुदन करती हुई नरकगत्यानुपूर्वीसे कहने लगी—

"हा! प्रिय सखी! आलिंगनके समय स्वामी और मेरे वीचमें पडकर कहीं विरह न करदे इसी भयसे कभी मैंने अपने कंठमें हार भी न पहिना था। परंतु हाय! आज नदी सागर और पर्वत सरीखे विशाल पदार्थोंका अंतर पडगया। न जाने मेरा पति कहां चला गया? इस विरहका क्या ठिकाना है? मैं अनाथ हो गई! हा! मेरापति मुझे प्रथम वय और वर्षाकालमें ही छोडकर चला गया. मैं वडी ही अभागिनी हूं अव मेरे पतिकी कृपाके विना मेरे यहां कौन आवेगा। हा! ठीक ही है जव मैं लडकी थी तव एक दिन मेरे शरीरमें विधवापनेके चिह्न देखकर किसी नैमित्तिकने मेरे पिता नरकसे यह कहा था कि—

तुम्हारी पुत्री नरकगति चिरकाल तक सौभाग्यवती नहिं रह सकेगी क्योंकि इसकी देहमें वहुतसे अशुभ चिह्न हैं। जब मेरे पिताने उन चिह्नोंके जानेकी इच्छा प्रकट की तो नैमित्तिकने विकराल दंत आदि समस्त चिह्न कह डाले थे। अव वे सव वातें मुझै प्रत्यक्ष दिखलाई दे रहीं हैं।" नरक गतिका हृदयविदारक विलाप सुन उत्तरमें नरकगत्यानुपूर्वीने समझाते हुये कहा—

सखी! क्यों वृथा विलाप कर रोती है! सुन विद्वानोंका वचन है—

नष्टं मृतमतिक्रांतं नानुशोचंति पंडिताः।
पंडितानां च मूर्खाणां विशेषोऽयं यतः स्मृतः॥

अर्थात् इष्ट यदि नष्ट होजाय, मरजाय, वा विछुड जाय तो चतुर लोग उसके लिये शोक नहिं करते क्योंकि विद्वानोंमें और मूर्खोंमें इतना ही अंतर माना गया है दूसरे-जो पुरुष दूसरेके-लिये शोक करता है उसै दो अनर्थोंका सामना करना पडता है अर्थात् एक तो वह शोकजन्य दुःख भोगता ही है दूसरे रोने चिल्लानेसे जो शरीरमें संताप होता है उसका दुःख भोगना पडता है इसके सिवा तेरा पति तो महावलवान वीर सम्यक्त्वके हाथसे मरकर सुमार्गमें न जाकर अपने अभीष्ट कुमार्गमें ही प्रविष्ट हुआ है तू क्यों वृथा शोक मनाती है?"

इसप्रकार सखी नरकगत्यापूर्वी तो इधर रमणी नरकगतिको आश्वासन देकर शांत कर रही थी और उधर सुभट मोह अपने स्वामी राजा मकरध्वजके चरणोंको प्रणामकर सैन्यमंडलको धैर्य वंधाता हुआ जहांपर केवलज्ञान आदि महाराज जिनेंद्रके

वीर खडे थे वहां जा पहुंचा और स्वयं सुभट केवलज्ञानसे मुटभेट करने पर उतारू हो गया। यह देख कामकी सेनामें भी उत्साहका संचार हो आया वह भी अपने २ योग्य प्रतिपक्षियों के सामने डट गई। जिसमें पांच इंद्रियां पंच महाव्रतोंके, आर्त रौद्र ध्यान धर्म्य शुक्लध्यानके, तीन शल्य तीन योगोंके, सात भय सात तत्त्वोंके, आस्रव आचारोंके, राग द्वेष क्षमा और दमके, तीन मूढता तीनों अनर्थदंडव्रतोंके, अनय सात पदार्थोंके, अठारह दोष धर्मोंके, अब्रह्म ब्रह्मवीरोंके और कषाय तपरूप सुभटोंके आगे जाकर खडे होगये। जिससमय दोनों ओरके वीर सजधज कर अपने २ मोर्चोंपर डट गये उससमय महाराज जिनेंद्रने स्वरशास्त्रके जाननेवाले शकुनी सिद्धस्वरूपसे पूछा—

"अरे सिद्धस्वरूप! पहिले हमारी सेनाके सुभटोंका क्यों मानभंग होगया था?" उत्तरमें सिद्धस्वरूपने कहा—

"भगवन्! पहिले आपका सैन्य मंडल उपशमश्रेणीरूप मैदानमें जहां कि बहुतसे बलवान शत्रु छिपे बैठे थे और जो युद्धके योग्य उचित स्थान न था—स्थित होकर युद्ध कर रहा था इसलिये उसका मानभंग होगया। अब वह क्षपकश्रेणी मैदानका अवलंबन कर रहा है यहांपर शत्रुओंके छिपनेकेलिये जगह नहीं है। जो शत्रु सामने पडते हैं वे समस्त यमलोकको चलते चले जाते हैं इसलिये अब पूर्ण विश्वास है कि इस मैदानके अवलंबनसे अवश्य ही आपके सैन्यमंडलकी विजय होगी।"

इसप्रकार इधर तो जिनराज शकुनी सिद्धस्वरूपसे अपनी भावी विजय सुनकर मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे और अपने

सेनापतिकी प्रशंसा कर रहे थे कि उधर कामका सेनापति मोह सामने अधंकाररूपी स्तंभको गाढकर केवलज्ञान सुभटसे ललकार कर क्रोधमें आ बोला—

"रे केवलज्ञान! ले हो होशियार, यदि तुझमें युद्ध करनेकी सामर्थ्य है तो जल्दी सामने आ और यदि मेरे तीक्ष्ण आघातसे डरता है तो यहांसे भागजा। क्यों व्यर्थ अपने प्राण गमाता है? वृथा मरनेसे क्या लाभ?" उत्तरमें केवल ज्ञानने गंभीरतापूर्वक कहा-

"रे नीच! क्यों व्यर्थ बोलता है? याद रख यदि आज मैं तुझै सग्राममें न जीत लूं तो मुझै भगवान जिनेंद्रका परम द्रोही समझना"

बस केवलज्ञानका इतना कहना ही था कि मोह आपसे वाहिर होगया और शीघ्र ही केवलज्ञानपर उसने अपने एक साथ तीक्ष्ण मिथ्यात्व प्रकृतिरूपी तीन वाण छोड दिये। उत्तर देनेमें केवलज्ञान भी कुछ कम चतुर न था, ज्यों ही उसने मोहके तीन वाणों को अपनी ओर आते देखा शीघ्र ही रत्नत्रयरूपी तीन वाण छोड कर उन्हें बीचमें ही खंड खंड कर डाला पश्चात् समाधिस्थानमें बैठकर इस खूबीसे उपशमरूप वाण चलाया कि वह मोहके वक्षस्थलमें जाकर लगा और उसके तीक्ष्ण आघातसे देखते २ शत्रुको जमीनपर गिरा दिया। परंतु थोडी ही देरमें मोह फिर संभल गया और केवलज्ञानपर प्रमादरूप वाणोंकी वर्षा करने लगा। केवलज्ञान वीरने भी छै आवश्यक और तेरह चारित्ररूप वाणोंसे उसकी वाणवर्षा रोकी और 'अरे मोह! अपने धनुषको संभाल संभाल' कहकर इसरूपसे निर्ममत्व नामा वाण छोडा कि मोहके

हाथका धनुष खंड २ होकर जमीनपर गिरपडा । जब मोहने केवलज्ञानपर आठ मदरूप हाथी पेले तो केवलज्ञानने अपने निर्मद हाथियोंसे उन्हें हटाया-एवं पश्चात् उपशमरूप खड्गसे उन्हें विध्वस्त कर डाला । जब मोहने देखा कि केवलज्ञानरूप वीरको वश करना टेडी खीर है तो उसे बडा क्रोध आया इसलिये उसने देव मनुष्य और भुजंगोंको कपानेवाली पृथ्वी और सागरको चलविचल करनेवाली कर्मप्रकृतिरूप बाणावली छोडी । ज्योंही प्रकृतिरूप बाणोंकी वर्षा जिनराजकी सेनाके सुभटोंने देखी वे मारे भयके थर थर कांपने लगे किंतु सुभट केवलज्ञानने जरा भी भय न खाया। उसने शीघ्र ही पांच प्रकारके चारित्ररूपी दिव्य शस्रोंसे उन्हको चूर चूर कर डाला और मोह मल्लको एक ही हाथमें जमीन पर गिरा कर मूर्छित करदिया। जब थोडीदेरके बाद फिर उसकी मूर्छा जागी तो वह अनाचाररूप तलवारको हाथमें लेकर केवलज्ञानकी ओर झपटा । केवलज्ञानने भी अपने हाथमें अनुकंपा रूप तलवार लेली ओर मोहके सामने डटकर निर्ममत्व रूप मुद्गरका ऐसा उसके शिरमें आघात किया कि उसका शिर फट गया और चीत्कार करता हुआ जमीनपर सदाके लिये गिर पडा। बंदी बहिरात्मा युद्धकी समस्त दशा देख रहा था ज्योंही उसने मोहको जमीनपर गिरता हुआ देखा वह शीघ्र ही राजा मकरध्वजके पास पहुंचा और इसप्रकार कहने लगा—

"कृपानाथ! तीनलोकका जीतनेवाला महा सुभट मोह संग्राममें काम आचुका ओर जिनेंद्रके सैन्यने आपका समस्त सैन्य छिन्न भिन्न करडाला इसलिये मेरी प्रार्थना है कि इस अवसरको

टालकर आप कहीं अन्यत्र चले जांय।" वंदी वहिरात्माके वचनोंका राजा मकरध्वजने तो कुछ भी जवाब न दिया किंतु महाराणी रति उसके वचनोंकी प्रशंसाकर वोली—

"प्राणनाथ! वंदी वहिरात्माका कथन यथार्थ है इसलिये जिस रीतिसे वनै हमें यहांसे जल्दी चला जाना चाहिये। स्वामिन्! जब अन्यत्र चलेजानेपर विना कष्टके हमारा कल्याण होता है तव वृथा अभिमानकर यहां रहनेसे क्या लाभ? इसलिये मेरी भी यही प्रार्थना है कि अब हमें यहां क्षणभर भी न ठहरना चाहिये शीघ्रही किसी निरापद स्थानपर चला जाना चाहिये।" जब राजा मकरध्वज रतिके वचनोंसे भी राहपर न आये तो प्रीतिको वडा क्रोध आया और वह खुले शब्दोंमें वोली--

प्यारी सखी रति! यह क्या वृथा कह रही हो? हमारे प्राणनाथ महा आग्रही हैं अब तू निश्चय समझ। राजा जिनेंद्रके हाथमें जय लक्ष्मीका जाना ओर हमारा विधवा होना टल-नहिं सकता। कहा भी है—

वचस्तत्र प्रयोक्तव्यं यत्रोक्तं लभते फलं।
स्थायी भवति चात्यंतं रागः शुक्लः परे यथा॥

अर्थात् जिसप्रकार सफेद वस्त्रपर राग (रंग) खूब चढता है उसीप्रकार जहांपर वचनोंके वोलनेसे राग (गाढ प्रेम) हो ओर उनसे कुछ फल निकले-असर पडे वहींपर वचन बोलना ठीक है। महाराज मकरध्वजके समीप तेरे शुभ भी वचनोंका आदर नहिं हो सकता।" रतिके कडे शब्दोंसे अवकी राजा मकरध्वजके ऊपर कुछ असर पडा और वे क्रोध न कर इसप्रकार शांत वचनसे रतिको समझाने लगे—

प्रिये ! तुम्हारा कहना यथार्थ है परंतु मेरा तो सुनो जिसने अपने पैने वाणोंसे सुर असुर मनुष्य आदि सबका मान गलित-कर दिया। जिसकी आज्ञाके सामने वडे २ इंद्र भी मस्तक झुकाते हैं सो क्या वह चक्रवर्ती मैं अल्प शक्तिवाले जिनेंद्रसे भयभीत हो पीठ दिखाकर भागूंगा ? नहीं, ऐसा कभी नहीं होसक्ता ? तुम स्त्री हो और स्त्रियां स्वभावसे ही भीत होतीं हैं इसलिये मैं कभी भी तुम्हारी वात नहिं मान सकता आज ही मैं जाकर जिनेंद्रका घ-मंड खंड २ किये देता हूं ।" इसप्रकार किसीकी भी वात न मान चक्रवर्ती मकरध्वज अपने पैने वाणोंको धनुपपर चढाता हुआ म-नरूपी मतंगपर आरूढ हो समरांगणमें जा पहुंचा । एवं जिनेंद्रके सम्मुख जा कहने लगा-

रे जिन ? पहिले तू मेरे साथ लड जब मुझे भी जीत ले तव मुक्तिवनिताके साथ विवाहकी इच्छा करना उससे पहिले तुझे मुक्ति वनिताका समागम होना कठिन है।" भगवान जिनेंद्र मो-क्षरूपी विशाल सरोवरके राजहंस थे। साधुरूपी पक्षियोंके विश्राम स्थान, मुक्ति वधूके अभिलापी, कामरूपी समुद्रको मथन करनेके-लिये मंदराचल, भव्यरूपी कमलोंकेलिये सूर्य, मोक्षरूपी द्वारके लिये कुठार, दुर्वार सर्पकेलिये गरुड, साधुरूपी रात्रिविकासी कमलों-केलिये चंद्रमा और मायारूपी हस्तिनींकेलिये मृगेंद्र थे। भला वे निकृष्ट कामदेवकी धमकीमें कव आसकते थे इसलिये उन्होंने म-करध्वजके वचन सुनकर कहा-

भाई ! इन व्यर्थकी वातोंमें क्या है ? यदि सामर्थ्य है तो आ ! अथवा क्यों तू मेरी वाणरूपी जाज्वल्यमान अग्निमें गिरकर

भस्म होना चाहता है? जा! जा!! अपने प्राण बचाकर ले जा! मेरे सामने न पडनेसे ही तेरा कल्याण है।"

कामदेव महा अभिमानी था भला वह जिनेंद्रके ऐसे अहंकारपूर्ण वचन कब सुन सकता था। ज्यों ही उसने भगवानके वैसे वचन सुने जलकर खाक हो गया और नेत्रोंको लाल २ करता हुआ बोला--

"रे जिन! क्यों घमंडमें चूर हो रहा है? क्या तुझे मेरे चरित्रका पता नहीं? अरे! मेरे ही भयसे इंद्र स्वर्ग चला गया, धरणेंद्र नरक गया, सूर्य छिपकर मेरुकी प्रदक्षिणा देने लगा और ब्रह्मा भी मेरा सेवक होगया है। विशेष कहांतक कहा जाय समस्त लोकमें कोई भी मेरा वैरी नहीं रहा है।"

जिनराज- बस रहने दो अधिक अपने मुंहसे अपनी प्रशंसा नहीं शोभती। बूढे टेढे और मूर्ख मंडल पर ही तेरा महत्त्व जम गया होगा। मुझ सरीखा अभी तक कोई मनुष्य न मिला होगा। याद रख यदि तेरे मनमें इसबातका घमंड है कि मेरे समान मनुष्य भी तेरा कुछ नहिं कर सकता तो ले तयार हो ना, अपना पराक्रम बतला! मैं तेरे सामने खडा हुआ हूं।"

मकरध्वज तो उग्र प्रकृतिका था ही, ज्योंही उसने जिनराजके वचन सुने उसका क्रोध उबल उठा। उसने शीघ्र ही अपना मनमतंग, जिसका शुंडादंड संसार था, चार कषाय चार पैर थे, राग द्वेष दो दांत और आशा निराशा रूप दो लोचन थे, जिनराजपर हूल दिया। जिनराजका भी क्षायिकसम्यक्त्व रूप हाथी कम बलवान न था ज्योंही उसने कामदेवके हाथीको अपनी ओर

आता देखा बीचमें ही रोक दिया और ऊपरसे राजा जिनेंद्रने ऐसा उसके मस्तकपर मुद्गरका हाथ जमाया कि वह चीत्कार करता हुआ तत्काल भूमिपर गिर गया।

प्रधान हाथीके मरने और स्याद्वादरूप भेरीकी गर्जनाके भयंकर शब्दश्रवणसे कामदेवके कटकमें खलबली मच गई। जिसप्रकार सूर्यके प्रचंडतेजसे अंधकार भग जाता है उसीप्रकार पांच महाव्रतोंसे पांचों इंद्रियां भयभीत हो भाग गई। सिंहसे भयभीत हस्तियोंके समान दश धर्मोंके सामने कर्म भी पलायन कर गये। उसीप्रकार साततत्त्वोंके सामने सात भय, प्रायश्चित्तोंके सामने शल्य, आचारोंके सामने आस्रव और धर्म्यध्यान एवं शुक्लध्यानके आगे आर्त और रौद्रध्यान भी न टिक सके। महाराणी रति यह सब दृश्य देख रही थी ज्योंही उसने अपने स्वामी मकरध्वजका हाथी जमीनपर गिरता देखा और सेनाके पंचेंद्रिय आदि सुभटोंका हाल वेहाल देखा उसका हृदय थर २ कापने लगा, वह शीघ्र ही दौडती २ अपने स्वामी मकरध्वजके पास आई और अश्रुपात करती हुई गद्गद कंठसे बोली-

"प्राणनाथ! क्या आप सब बातोंको जानकर भी अजान बन रहे हैं? आप इतने बुद्धिमान होकर भी क्या नहीं देखते? स्वामिन् देखिये! आपका समस्त सैन्यमंडल छिन्न भिन्न हो चुका और आपका समयपर प्राण बचानेवाला हाथी भी धराशायी हो गया! क्या अब भी कुछ बाकी रह गया है! महाराज! अब तो आप युद्धकी होंस छोडदें। आप निश्चय समझें-जिनराज मामूली मनुष्य नहीं है जिसको आप जीत लेंगे, वह प्रचंड शक्तिका

धारक वीरोंका शिरताज है। मेरा तो अब आपसे यही निवेदन है कि आप किसी निरापद स्थानका अवलंबन करें और वहां सुखसे अपने जीवनके शेष दिन बितावें।"

इधर तो राजा कामदेवकी सेनाका यह महाभयंकर हाल हो रहा था और उधर सुभट अवधिज्ञान शीघ्र ही राजा जिनराजके पास पहुंचा और प्रणामकर इसप्रकार निवेदन करने लगा—

"भगवन्! लग्नकी वेला बिलकुल समीप आगई है। युद्धको बढाकर व्यर्थ कालव्यय करना उचित नहीं क्योंकि केवलज्ञानरूपी सुभटने मोहको तो क्षीणशक्ति कर दिया है। अब वह उतना बलवान नहीं जो कुछ विघ्न कर सकै। हाँ! केवल कामदेव सुभट कुछ बलवान अवश्य प्रतीत होता है परंतु आपके सामने वह भी कुछ नहीं है। इसलिये अब आप ऐसा काम करिये जिससे एक ही हाथमें दोनोंकी सफाई हो जाय।" बस अवधिज्ञानके ये वचन सुनते ही जिनराजका उत्साह और भी बढ गया। वे शीघ्र ही कामदेवके सम्मुख अपनी समस्त शक्तिसे अड गये और उसे ललकारकर बोले—

"रे काम! घरके अंदर स्त्रियोंमें बैठकर ही घमंड कर लिया होगा परंतु तेरा वैसा करना क्षत्रियोंका धर्म नहीं, कायरोंका है। यदि कुछ वीरता रखता है तो आ-मेरा सामना कर।"

अबके तो राजा कामकी बुद्धि चकडाई। वह जिनराजको कुछ भी उत्तर न देकर अपने क्षीणशक्ति घायल मोहसे इसप्रकार मंत्र करने लगा—

"भाई मोह! अब क्या करना चाहिये? सेना प्रायः सब छिन्न भिन्न हो चुकी, जिनराजका बल बढता ही जाता है। इस-

समय ऐसी कोई उत्तम युक्ति बतलाओ जिससे जिनराजका मान-भंग हो और अपना इकछत्ता राज्य स्थिर रहा आवे।"

मोह-कृपानाथ! आपके पास परीषहरूपी अमोघ विद्यायें मौजूद हैं आप उनका स्मरण करें उनसे अवश्य आपका जय होगा।" काम तो यह चाह ही रहा था इसलिये उसने शीघ्रही परीषह विद्याओंका स्मरण किया और वे तत्काल सामने आकर 'देव! क्या आज्ञा है? हमें क्या करना चाहिये? जल्दी कहिये' ऐसा पुकार २ कर कहने लगीं। जब कामने देखा कि विद्यायें सामने खडी हैं तो वह उनसे बोला-

"अरी विद्याओ! मेरा वैरी प्रचंडशक्तिका धारक राजा जिनराज प्रगट होगया है तुम उसे जीतो और मेरी सहायता करो।"

अपने स्वामीकी आज्ञा पाते ही तीक्ष्ण खड्गकी धारके समान पैने, अनेक प्रकारके दुःख देनेवाले दंश मशक आदि अनेक शस्त्रोंसे सज्जित शीघ्र ही परीपहरूपी विद्यायें जिनराजके पास गई और उन्हें चारों ओरसे आच्छन्न कर दुःख देने लगीं। महाराज जिनराजके पास भी विद्याओंका अभाव न था ज्योंही उन्होंने देखा कि चारों ओरसे मुझे परीपहोंनें घेर लिया है और अधिक दुःख दे रही हैं शीघ्र ही निर्जरा नामकी विद्याका स्मरण किया वह सामने आकर उपस्थित होगई और जिसप्रकार गरुड़के सामने सर्प इधर उधर भग जाते हैं निर्जरा नामकी अमोघ विद्याके सामने परीपह भी तत्काल विलीन होगईं। इसप्रकार जब कामदेवकी प्रबल भी विद्यायें राजा जिनराजके सामने निरर्थक हो चुकीं तो उनके सामने मनःपर्ययज्ञान आया और नम्रतापूर्वक बोला-

कृपानाथ! विवाहका समय विलकुल समीप आ गया है अब क्या विलंब कर रहे हैं? भगवन्! सुभट केवलज्ञान द्वारा क्षीण भी किया गया मोह अभीतक जीवित है इसे आप सर्वथा नष्ट कर डालिये। तभी आपका मुक्तिकन्याके साथ विवाह हो सकैगा और मोहके नष्ट हानेसे ही कामदेव भी पलायन कर जायगा। आप मोहको मामूली सुभट न समझैं क्योंकि--

मोहकर्मरिपौ नष्टे सर्वदोषाश्च विद्रुताः।
छिन्नमूलद्रुमा यद्वद् यथा सैन्यं निनायकं॥

अर्थात् जिसप्रकार सेनापतिके नष्ट हो जानेपर सेना लापता हो जाती हैं उसीप्रकार मोहरूपी वलवान वैरीके नष्ट हो जानेपर जडके नष्ट हो जानेमे वृक्षोंके समान समस्त दोष भी एक ओर किनारा कर जाते हैं-फिर वे कभी सामना नहिं कर सक्के।" भगवान जिनेंद्रने सुभट मनःपर्ययके वचन स्वीकार कर लिये और कामदेवसे क्रोधमें आकर वे कहने लगे—

"रे! स्त्रियोंके प्रीतिपात्र काम! जा और युवतियोंके हृदय रूपी सघन कंदराओंमें रहकर अपने प्राण वचा। नहीं तो मैं तुझे समूल नष्ट किये देता हूं।" भगवान जिनेंद्रके वचनोंसे भयभीत हो फिर कामदेवने मोहसे पूछा--

"भाई मोह! अव क्या करना चाहिये? जिनराजका तो जरा भी घमंड चूर नहिं होता।"

मोह--क्या वताऊं? आजतक ऐसा कोई मनुष्य ही न देखा जो आपकी आज्ञासे वाह्य हो परंतु जिनराजतो विलक्षण ही मनुष्य निकला। अच्छा कृपानाथ! आपकी कुल देवता दिन्याशिनी

विद्या है, आप उसका आराधन करें। आप निश्चय समझें वह अवश्य आपके संकटको काट देगी।" मंत्री मोहकी मंत्रणानुसार कामदेवने शीघ्र ही दिव्याशिनी नामकी विद्याका जोकि चंडीके समान भयंकर, तीनों लोकको हजम कर जानेवाली, देवेंद्रोंको भी कपानेवाली, अद्भुत पराक्रमकी धारक और ब्रह्मा आदिसे भी दुर्जय थी' शीघ्र ही स्मरण किया और वह भी कामदेवके सामने शीघ्र ही आकर खडी हो गई यह देख हाथ जोडकर कामने उसकी प्रशंसा करते हुये कहा–

"भगवती विद्ये! तू समस्त लोकको जीतनेवाली है। अचिंत्य पराक्रमकी धारक, मान अपमान प्रदान करनेवाली और तीन भुवनकी स्वामिनी है। मा! मुझपर अचिंत्य कष्ट आकर पडा है। सिवाय तेरे कोई भी अव मेरा सहायक नहीं है अव तू मुझपर कृपा कर और मेरा कष्ट निवारण कर।" कामदेवकी प्रार्थनासे कुलदेवता दिव्याशिनी प्रसन्न हो गई और उससे उत्तरमें बोली–

"प्रिय कामदेव! कहो क्या कार्य है? मुझे क्यों बुलाया?"

कामदेव–मा! राजा जिनेंद्र बडा ही घमंडी राजा है। मैं इसे हरि हर ब्रह्मा आदिके समान समझता था इसलिये उनके समान इसका भी जीतना मैंने सरल समझ लिया था परंतु यह वैसा न निकला। मेरी समस्त सेनाको छिन्न भिन्न कर इसने छक्के छूटा दिये। पूज्ये! हताश हो मैंने तेरा स्मरण किया है तू अव मेरी रक्षाकर मुझे विजयी कर दे। तू निश्चय समझ, तेरे जयसे मेरा जय और तेरे पराजयसे मेरा पराजय है यदि तेरा पराजय हो गया तो मैं नियमसे स्वदेशका परित्याग कर

दूंगा।" इसप्रकार कामदेवके अधिक अनुनय विनय करनेसे कुलदेवी पसीज गई और "हां यह कौन बडी बात है।" कहकर समस्त पदार्थोंको भक्षण करती एवं समुद्रोंके जलको पीकर सुखाती हुई वह भगवान जिनराजकी ओर चल दी। महाराज जिनराज भी सब प्रकारसे तयार थे ज्यों ही उन्होंने दिव्याशिनीको क्रूरतासे अपने ऊपर टूटता देखा उन्होंने शीघ्रही अधःकरणरूप बाणोंकी वर्षा करना प्रारंभ कर दी। किंतु वार खाली गया पश्चात् वेला चांद्रायणव्रत आदि बाण चलाये परंतु तब भी दिव्याशिनीका जोर न घटा और वह जिनराजके पास आकर इसप्रकार कहने लगी—

"अरे जिन! मुझे क्षीण करनेका यह क्या उपाय कर रहा है? तेरे सरीखे मनुष्यके ऐसे तुच्छ उपाय मेरा बाल भी बांका नहिं करसकते। बस अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है अब अपने अभिमानका सर्वथा त्याग करदे और यदि शक्ति रखता हो तो मेरे साथ युद्ध कर।" उत्तरमें जिनेंद्रने कहा—

"री दिव्याशिनी! तेरा कहना तो यथार्थ है परंतु तेरे साथ युद्ध करनेमें मुझे लज्जा आती है क्योंकि यह क्षत्रियोंका धर्म नहीं जो कातर स्त्रियोंके साथ युद्ध करें।"

बस जिनेंद्रका इतना कहना ही था कि दिव्याशिनी जलकर खाक होगई। उसने पृथ्वीसे लेकर आकाश पर्यंत अपना मुंह फैलाया। बडी २ और भयंकर डाढोंकी रचनाकी एवं भैरव रूप धारणकर अट्टहास्य करती हुई भगवान जिनेंद्रपर वार करने लगी। जब जिनराजने देखा कि यह किसीप्रकार भी नहिं मानती और अपना महत्त्व जमाती ही चलती है तो उन्होंने एकांतर तेला

रसपरित्याग पक्ष मास ऋतु छैमास और वर्षपर्यंत उपवासरूपी तीक्ष्ण वाणोंकी वर्षा करना शुरू किया जिससे महाभयंकर भी दिव्याशिनी देखते २ जमीनपर बेहोश हो गिरपडी।

इसप्रकार जब दिव्याशिनी भी रणमें काम आगई तब मोहने कामदेवसे कहा-

"कृपानाथ! अब क्या देख रहे हैं! अरे जिसकी प्रचंड शक्ति संसारमें विख्यात थी वह दिव्याशिनी भी रणमें धराशायिनी होगई और अब तक स्वातिनक्षत्रमें श्वेत जलबिंदुओंके समान बराबर राजा जिनेंद्रकी वाणवर्षा हो रही है। स्वामिन्! आप तो अब अपने प्राण बचाकर यहांसे चले जांय। मैं थोडी देर तक इस जिनेंद्रके सैन्यके साथ युद्ध करूंगा संभव है मेरे युद्धसे आपके अभीष्टकी कुछ सिद्धि हो जाय।"

राजा कामदेवका शरीर उससमय व्रतरूप वाणोंसे छिन्न भिन्न हो चुका था इसलिये वे स्वयं पलायनका अवसर खोज रहे थे और इसी बीचमें मोहकी सम्मति भी मिल गई अब क्या था मोहके वचन सुनते ही वे विना कुछ आना कानी किये जिसप्रकार प्रचंड पवनसे समुद्र चल विचल हो जाता है सिंहके भयसे गज और सूर्यके भयसे अंधकार भग जाता है उसीप्रकार संग्रामके मैदानसे दौडकर जाने लगे। राजा कामदेवके चले जाने पर सुभट मोहने राजा जिनराजकी सेनाका सामना किया किंतु उसे पद पदपर स्खलित होना पडा। मोहकी वैसी दशा देख राजा जिनेंद्रने कहा-

"रे वराक मोह! जा! जा!! क्यों वृथा मृत्युकी बाट देख रहा है? अब यहां तेरी कुछ चल नहिं सकती।"

मोहने उत्तर दिया--रे अल्प शक्तिके धारक जिन! क्यों वृथा आलाप कर रहा है? मेरे साथ थोडी देर युद्ध तो कर जिससे तुझे मेरी वीरताका पता लग जाय। अरे! ऐसी किसमें सामर्थ्य है जो मेरे जीते जी चक्रवर्ती महाराज कामदेवको विजय करले। नीतिकी वचन है कि भृत्य स्वामीके लिये अपने प्राणोंकी भी वलि देदे। मैं चक्रवर्ती राजा मकरध्वजका सेवक हूं इसलिये मैं उनकी सेवाके सामने अपने प्राणोंका कुछ भी मूल्य नहिं समझता। वीर पुरुष रणमें मरनेसे भयभीत नहिं होते क्योंकि रणमें यदि विजय हुआ तो वीरलक्ष्मीकी प्राप्ति होती है और कदाचित् मरण होगया तो वीरगतिका लाभ होता है।" इसप्रकार राजा जिनेंद्र और मोहका आपसमें वाद विवाद हो ही रहा था इतनेमें सुभट शुक्लध्यान मारे क्रोधके दांतोंको पीसता हुआ वीर मोहके सामने आ डटा और अपने चार भेदरूपी तीक्ष्णवाणोंसे उसे खंड खंड कर देखते देखते जमीनपर गिरा दिया। जब मोहकी सफाई होगई तो राजा जिनेंद्रकी सेनाके हर्षका पारावार न रहा। वडे जोरसे उसमें 'जय जय' का कोलाहल होने लगा एवं राजा जिनेंद्रने मय अपने विशाल सैन्यके राजा कामदेवका पीछा किया। ज्योंही राजा कामदेवने मय सेनाके राजा जिनेंद्रको अपने पीछे आता देखा उसके होश उडगये, मुख सूख गया। अंगका प्रत्येक अवयव थर थर कांपने लगा, उससमय न उसे स्मरण रहा और न वाण धनुष अश्व रथ हाथी और पदाति याद आये। जितनी जल्दी हो सकी वह आगे दौडता ही चला गया, जब जिनराजने देखा कि कामकी दशा इससमय विचित्र

है तो वे शुक्ल ध्यान उसे न देखले उसके पहिले ही उसके पास पहुँचे और घेरकर इसप्रकार बोले " रे काम ! इतनी शीघ्रतासे क्यों दौड रहा है ? क्या पुनः माके पेटमें घुसना चाहता है ? याद रख ! कहीं भी तू चला जा अब बच नहिं सकता । अरे ! तू तो यह कहता था कि तीनों लोकमें मेरा कोई जीतनेवाला ही नहीं । ले ! अब मेरी चोट सम्हार !" ऐसा कहकर शीघ्र ही धर्म्यध्यानरूपी बाणकों धनुषपर चढा लिया और उसके वक्षःस्थलपर ऐसा आघात किया कि वह जिसप्रकार पवनके अघातसे विशाल वृक्ष, पंख कटजानेसे क्रूरपक्षी और वज्रपातसे पर्वत जमीनपर गिर जाता है उसीप्रकार मूर्छित हो जमीनपर गिर गया । जब कामदेव धराशायी हो गया तो चारो ओरसे जिनराजकी सेनाने उसै घेर लिया और जंजीरोंसे जिकड डाला । कुछ समयबाद जब कामकी मूर्छा जागी तो अपनी भयंकर दशापर उसै नितांत दुःख हुआ और मनही मन वह यह सोचने लगा–

पूर्व जन्म कृत पुण्यका फल, होत है उदित जीवके तत्र ।
नीतिविद जनकी सुनीति जो दीखती सकल सत्य आज सो ॥

अर्थात्–पूर्व जन्ममें किये हुये कर्मोंका फल अवश्य प्राणियोंको भोगना पडता है ऐसा जो नीतिकारोंका उपदेश है वह यथार्थ है और आज वह खुलासारूपसे देखनमें आ रहा है ।"

प्रत्येक मनुष्यके स्वभाव विलक्षण हुआ करते हैं जब बलवानोंका भी मान-दलन करनेवाला राजा काम जिनराजसे हार

पूर्वजन्मकृतकर्मणः फलं पाकमेति नियमेन देहिनां ।
नीतिशास्त्रनिपुणा वदंति यद् दृश्यते तदधुनात्र सत्यवत् ॥

गया और उनके अंटेमें फंस गया तो जिनराजकी सेनाके बहुतसे वीर कहने लगे इस नीचको प्राणरहित कर देना चाहिये, कोई कहने लगा इसे शिर मूडकर गधेपर चढाना चाहिये और अनेकोंने यह कहा—इस पापात्माको चारित्रपुरसे बाहर जाकर शूलीपर चढ़ा देना चाहिये ऐसे बलवान अन्यायीका जीना अधिक संतापका देनेवाला होगा। इसप्रकार जिनराजकी सेनाके वीरोंका तो यहांपर यह मत्त आलाप हो रहा था और उधर रति और प्रीतिको स्वामी कामदेवके असली हालका पता लगा जिससे मारे भयके वे थर थर कांपने लगीं और शीघ्र ही भगवान जिनेंद्रके पास आकर विनयपूर्वक निवेदन करने लगीं—

"हे मोक्ष लक्ष्मीके स्वामी! भव्यरूपीकमलोंकेलिये सूर्य! चिंतित पदार्थोंको प्रदान करनेवाले चिंतामणि! चारित्रनगरके रक्षक! देव! हमें विधवा न करो, करुणाकर हमारा सौभाग्य ज्यों-का त्यों बना रहने दो। यद्यपि संसारमें यह कहावत चरितार्थ है कि सज्जनकी रक्षा और दुर्जनका नाश करना चाहिये इसलिये अवश्य हमारा स्वामी तुम्हारे द्वारा मारने योग्य है तथापि हम-पर करुणाकर इससमय तो क्षमा करदेना ही उचित है। भग-वन्! हमने अपने स्वामीको बहुत समझाया था परंतु उसने नहिं माना उसका फल पा लिया। अब आपको इसके मारनेसे ही क्या लाभ? इसकी तो शक्ति क्षीण हो ही गई।" रति और प्रीतिके करुणापरिपूर्ण वचन सुन भगवानका हृदय दयासे गद्गद हो गया इसलिये वे उनसे बोले—

"रति प्रीति! अधिक बोलना व्यर्थ है। तुम्हारा स्वामी

महानीच और दुष्ट है । इसके प्राणरहित होनेपर ही कल्याण हो सकता है परंतु खैर तुम लोगोंकी ओर देखनेसे इसे मारा तो नहिं जायगा परंतु हां इसै देशपरित्याग जरूर करना पडेगा, ऐसा पापी अब हमारे देशमें नहिं रह सकता ।"

रति और प्रीति–भगवन् ! आपकी आज्ञा प्रमाण है । पर हमें स्वदेश विदेशका ज्ञान होना चाहिये ।

जिनराज (कुछ हँसकर) इस नीचको हमारे देशकी सीमाका कभी उल्लंघन न करना होगा ।

रति और प्रीति–भगवन् ! यही तो पूछना है कि आपके देशकी सीमा कहांतक हे ! कृपाकर हमैं एक सीमापत्र लिख कर देदीजिये ।" राजा जिनेंद्रने रति और प्रीतिका वचन स्वीकार कर लिया और पत्र लिखनेकेलिये दर्शनवीरको आज्ञा देनेपर उसने शुक्र महाशुक्र, शतार सहस्रार, आनत प्राणत, आरण अच्युत नवग्रैवेयक विजय वैजयंत जयंत अपराजित सर्वार्थसिद्धि और सिद्धशिलाको स्वदेश रख लिया और यदि इन स्थानोंपर कामदेव प्रवेश करैगा तो अवश्य उसै प्राणघातका दंड भोगना पडेगा अन्यत्र वह कहीं रहै हमारा उसमें कोई प्रतिरोध नहीं, ऐसा सीमापत्र लिखकर रति और प्रीतिके हाथमें देदिया । सीमापत्रको प्राप्त कर रति प्रीति फिर बोलीं–

स्वामिन् ! यह सीमा हमैं मंजूर है परंतु कतिपय देशतक हमैं पहुंचा आवै ऐसा कोई आप अपना नौकर दीजिये ।" रतिके वचनोंसे प्रेरित हो राजा जिनराजने धर्म आचार दम क्षमा नय तप तत्त्व दया प्रायश्चित मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मनः

पर्येयज्ञान शील निर्वेग उपशम सुलक्षण सम्यग्दर्शन संयम स्वाध्याय ब्रह्मचर्य धर्म्यध्यान शुक्लध्यान गुप्ति मूलगुण निर्ग्रंथ अंगपूर्व और केवलज्ञान आदि जितने सुभट थे सबको इकट्ठा किया और कहा—

"राजा कामको देश निकाला दिया गया है। आप लोगोंमें कौन सुभट उसे कुछ दूर तक जाकर पहुंचा सकता है।" राजा जिनेंद्रके ऐसे वचन सुन किसीने कुछ उत्तर न दिया। सबके सब मौन साधगये एवं सभाभवनमें एकदम सन्नाटा छा गया। जब जिनेंद्रने देखा कि सबकी बोलती बंद है तो वे शांतिवचनोंमें इस प्रकार कहने लगे—

"अरे वीरो! यह क्या कारण है जो आप सब लोगोंने मौन धारण करलिया है। सबके सब मूक होकर बैठे हुये हो। बतलाओ तो सही, तुम्हारे मनमें ऐसा कौनसा भयंकर भय पैठ गया है जो बोलनेमें प्रतिबंध डालता है? क्या तुमको कामदेवसे भय लगता है? अरे उसका घमंड तो मैंने चूर चूर कर डाला। अब तो उसमे यह भी सामर्थ्य नहीं जो तुम्हारी ओर आंख उठाकर भी देख सके इसलिये तुम्हारा उससे इतना भयभीत होना नितांत अयुक्त है। तुम निश्चय समझो-जिसप्रकार विषके विना सांप, दांतोंके विना हाथी, नखोंके विना सिंह, सेनाके विना राजा, शस्त्रके विना शूर वीर, डाढोंके विना शूकर, विना नेत्रोंके बाघ, विना गुण (डोरा) के धनुष और विना सींगोंके भैंसा, कुछ भी नहिं कर सकता उसीप्रकार विना वीरताके काम भी कुछ नहिं कर सकता-मेरे तीक्ष्ण बाणोंसे उसकी शूरता लापता होगई है।' भगवानके इस उन्नत उपदेशको सुनकर सुभट शुक्लध्यानसे न रहागया वह

तत्काल भगवानके पास आकर खडा होगया और प्रणामकर बोला-

"भगवन्! कामदेवके साथ जानेकेलिये मैं तयार हूं आप मुझे आज्ञा दीजिये। परंतु इतना निवेदन है कि जब आप सर्वज्ञ हैं, संसारके स्थूल सूक्ष्म सब प्रकारके पदार्थ आपकी आत्मामें प्रकाशमान हैं तब इस बातको जानकर भी राजा कामके जीते रहनेमें संसारका कल्याण नहिं हो सकता यह नीच संधिका भंगकर पुनः उपद्रव अवश्य करेगा' तब आप इसे जीता क्यों छोडते हैं? क्यों नहीं इस नीचकी मूलसे सफाई कर देते। यह मुझे तो आपका न्याय युक्तियुक्त प्रतीत नहिं होता।

जिनराज-भाई शुक्लध्यान! तुम्हारा कहना यथार्थ है परंतु शरणमें आये हुये वैरीको भी न मारना राजाका धर्म है यह नीतिशास्त्रका उपदेश है। और जो बात हमको अभीष्ट थी वह कामदेवके निस्तेज होनेपर सिद्ध होचुकी इसलिये तुम्ही बताओ इसका मारना युक्त है वा अयुक्त? मेरी आज्ञा है कि कामदेवको जीवित रखकर देशसे वहिष्कृत करदेना चाहिये। तुम इसबातसे मत डरो कि यह पुनः उपद्रव करेगा क्योंकि अब इसमें ऐसी सामर्थ्य नहीं जो फिरसे कुछ उपद्रव करसके। कदाचित् इसका उपद्रव सुना भी जायगा तो फिर इसको उचित ही दंड दिया जायगा।" भगवान जिनेंद्रका यह वाद विवाद रति और प्रीति भी सुन रहीं थीं ज्योंही उन्होंने अपने विषयमें शुक्लध्यानकी प्रकृतिको क्रूर जाना और यह सुनकर कि यही हमें पहुंचाने जायगा मारे भयके वे थर थर कांपने लगीं और भगवानके चरणोंमें गिरकर नम्रतापूर्वक बोलीं-

भगवन्! सुभट शुक्लध्यानका विचार हमारे विषयमें अच्छा नहीं, ऐसा पुरुष हमें मार ही डाले तो क्या भरोसा? क्योंकि—

आकृति इंगित कृत्य अरु भाषण विविध स्वरूप।
मुख अरु नेत्र विकार भी कहते मनका रूप॥

अर्थात् शरीरके आकारसे इशारे चेष्टा बोली और मुख एवं नेत्रके विकारसे मनके भीतरी भावका पता लग जाता है। इसलिये किसी अन्यको जानेकी आज्ञा दीजिये तो वडी ही कृपा हो।

जिनराज (कुछ हंसकर) नहि रति, तुम्हें किसीप्रकारका भय न करना चाहिये। तुम निश्चय समझो वीर शुक्लध्यान कभी ऐसा नहिं करसकता? क्या तुम्हें यह सर्वथा विश्वास है कि मेरी आज्ञा विना लिये ही शुक्लध्यान तुम्हें मार डालेगा?" इसप्रकार रति और प्रीतिको अपने वचनोंसे पूरा पूरा विश्वास कराकर भगवान जिनेंद्रने उन्हे शुक्लध्यानके साथ भेज दिया और वे राजा कामदेवके पास जाकर वोलीं—

"कृपानाथ! तुम्हारी रक्षाके लिये हमने वडे २ अनुनय विनय कर भगवान जिनेंद्रको वडी कठितासे राजी कर पाया है। आप निश्चय समझें यदि हम भगवान जिनेंद्रके पास जाकर आपके लिये निवेदन न करतीं और उससे उनके हृदयमें अनुकंपा प्रसार न होता तो आप अवश्य प्राणरहित हो जाते भगवान जिनेंद्रने आपके मारनेका पूरा पूरा विचार करलिया था। वे आपको कभी छोड नहिं सकते थे। भगवान जिनेश्वरने वीर दर्शनसे लिखवाकर यह सीमापत्र दिया है आप इसे लें वाचें और इसकी आज्ञानुसार

---

१ आकारैरिंगितैर्गत्या चेष्टया भाषणेन च-नेत्रवक्त्रविकारेण लक्ष्यतेऽतर्गतं मनः।

चलें। हमारा निवेदन है कि भगवान जिनेंद्रने जो कुछ सीमा बांध दी है- जिन २ प्रदेशोंमें हमें रहनेकी आज्ञा दी है उन्हीं प्रदेशोंमें चलें और वहांपर सुखसे रहें। नाथ! अब आपको जिनेंद्रकी आज्ञा स्वीकार करनी ही पडेगी। अब आपमें यह सामर्थ्य नहिं रही जो आप उनके विरुद्ध पक्षमें कुछ भी करसकें। भगवान जिनेंद्रने कुछ प्रदेशोंतक पहुंचानेकेलिये सुभट शुक्लध्यानको भी भेजा है इसलिये आपको चलना ही होगा अब आप किसी वहानेसे यहां नहिं रह सकते।" रति और प्रीतिके ऐसे वचन सुन राजा काम क्षणभरकेलिये बुद्धिशून्य हो गये। कुछ समय पहिले जो उनका अहंकार पूर्णरूपसे लहलहा रहा था इससमय सर्वथा किनारा करगया उनके मनमें अब सहसा विकल्प उठने लगे--

हाय अब तो बडी कठिन अटकी। इससमय क्या करना चाहिये क्या न करना चाहिये कुछ सूझ नहीं पडता, शुक्लध्यानका हमारे साथमें रहना अच्छा नहीं। यह भयंकर सुभट है यदि इसने मुझे देख पाया तो जीवित नहिं छोड सकता मुझे शुक्लध्यानकी ओर से कभी विश्वास नहिं हो सकता। अरे!

दुर्बल भी विश्वासरहित नर आते नहि बलवंतके तों कर।
अति बलिष्ठ भी विश्वासी जन, रहते निवलोंके गुलाम बन॥

अर्थात् अविश्वासी दुर्बलोंको भी बलवान नहिं बांध सकते और विश्वासी बलवानोंको भी दुर्वल बांध लेते हैं जब यह नीति प्रसिद्ध है तब शुक्लध्यानका कैसे विश्वास किया जाय कि वह मुझे

---

१ न बध्यंते ह्यविश्वस्था दुर्वला बलवत्तरैः।
विश्वस्थाश्चाशु वध्यंते बलवंतोऽपि दुर्वलैः॥

छोड ही देगा, इसप्रकार अधिक पश्चात्ताप न कर उसने अपने शरीरको सर्वथा नष्ट कर दिया और अनंग हो युवतियोंकी हृदय कंदरामें जहां कि उसने अपना पता लगना भी दुस्साध्य समझा प्रविष्ट होगया।

इसप्रकार श्रीठक्कुरमाइदेवके पुत्र जिनदेवद्वारा विरचित संस्कृत मकरध्वजपराजयकी भाषावचनिकामें मकरध्वजके पराजयका वर्णन करनेवाला चतुर्थ परिच्छेद समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

पंचम परिच्छेद।

जिससमय इंद्रने यह देखा कि महा अभिमानी कामदेव पौरुषहीन हो चुका है और शरीरको सर्वथा त्यागकर अनंग हो युवतियोंकी हृदय गुफामें मारे भयके प्रविष्ट हो गया है तो उसने प्रसन्न होकर शीघ्र ही दूती दयाको अपने पास बुलाया और उसे यह आज्ञा दी—

"अरी दया! तू अभी मोक्षपुर जा। वहां राजा सिद्धसेनसे यह कहना कि विवाहका समय बिलकुल समीप आ पहुंचा है इसलिये आप अपनी पुत्री मुक्तिको संग लेकर शीघ्र ही मेरे साथ चलियें।" स्वामी इंद्रकी आज्ञासे दूती दया शीघ्र ही मोक्षपुर पहुंची और वहां सिद्धसेनके साथ उसके इसप्रकार उत्तर प्रत्युत्तर होने लगे—

सिद्धसेन—अरे तू कौन है?

दया—श्री महाराज! मुझे दया कहते हैं।

सिद्धसेन—किसने तुझे यहां भेजा है?

दया-इंद्रने।

सिद्धसेन-किस कार्यकेलिये ?

दया-विवाहार्थ मय मुक्तिकन्याके आपको बुलानेकेलिये।

सिद्धसेन-विवाहके लिये ? अच्छा यह वताओ, जिस वीरके साथ मेरी कन्याका विवाह होगा वह कैसा है उसका कुल गोत्र और रूप कैसा है और कितनी उसके शरीरकी उंचाई है ?

दया-श्रीमहाराज ! जिस युवाके साथ आपकी कन्याका विवाह होनेवाला है उसके रूप नाम गुण गोत्र और लक्षण पूछनेकी क्या आवश्यकता है ? यदि आप रूप आदि जान भी लेंगे तो क्या करेंगे ?

सिद्धसेन-दया ! दूती होकर भी तू वावली है अरी ! जो पुरुष युवा सुंदर उत्तमदेशका रहनेवाला, देव शास्त्र और गुरुओंका भक्त, प्रकृतिका सज्जन होता है वही पुरुष उत्तम माना जाता है। शीलवान, धनी, उत्तम गुणोंके भंडार, शांत मूर्तिके धारक, उद्योगीको ही कन्याका पति बनाना चाहिये। इसलिये ऐसाही पुरुष मेरी कन्याके साथ विवाह करनेका अधिकारी हो सक्ता है अन्य नहीं।

दया-अच्छा महाराज ! यदि आप वरका नाम ग्राम ही पूछना चाहते हैं तो मैं कहती हूं आप सुने--जिस पुरुषके साथ आपकी कन्याका विवाह होनेवाला है वह चौदहवे कुलकर महाराज नाभिका पुत्र है उसका नाम ऋषभ देव, गोत्र तीर्थकर, रूप अद्भुत-तपेहुये सुवर्णके समान और वक्षस्थल विशाल है एवं वह सबका प्रिय, एकहजार आठ लक्षणोंका धारक, चौरासी गुणोंसे

युक्त, अविनाशी संपत्तिका धारक, कर्णपर्यंत लंबे कमलके समान नेत्रोंसे भूषित, घोटूपर्यंत लंबी भुजाओंसे युक्त, और पांचसौ धनुष ऊंचे शरीरका है।" इसप्रकार दूती दयाके मुखसे ज्योंही महाराज सिद्धसेनने भगवान जिनेंद्रके रूप आदिकी प्रशंसा सुनी मारे हर्षके उनका हृदय गद्गद हो गया और वे इसप्रकार कहने लगे-

दया! भगवान जिनेंद्रके साथ मुझे अपनी कन्यांका विवाह मंजूर है तू इंद्रके पास जा और उससे यह कहदे कि-

"यमराजके मंदिरमें कर्मरूपी धनुष रक्खा है उसै लेकर महाराज सिद्धसेन अपनी कन्या मुक्तिके साथ आरहे हैं और वे स्वयंवरमार्गसे अपनी कन्याका विवाह करेंगे इसलिये उनके पहिले ही स्वयंवर भूमिकी रचना हो जानी चाहिये।" राजा सिद्धसेनके वचनोंसे दूतीको बडा हर्ष हुआ। वह शीघ्र ही मोक्षपुरसे चलकर इंद्रके पास आई और जो कुछ महाराज सिद्धसेनका संदेशा था सारा आकर कह सुनाया। दयाके वचन सुनकर संतुष्ट हो इंद्रने शीघ्र ही कुवेरको बुलाया और उसै यह आज्ञा दी-

"कुवेर! महाराज सिद्धसेनने अपनी कन्या मुक्तिका भगवान जिनेंद्रके साथ विवाह करना मंजूर कर लिया है परंतु उनका आग्रह है कि विवाह स्वयंवर मार्गसे ही होना चाहिये और वे चले आरहे हैं। इसलिये तुम शीघ्र ही समवसरणरूप-स्वयंवर भूमिकी रचना कर दो।" इंद्रकी आज्ञानुसार कुवेरने बारह योजनके मध्यमें समवसरण बनाया और उसमें बीस हजार सोपान, झाडी कलश ध्वजा चमर छत्र दर्पण स्तंभ गलियां निधि मार्ग तलाव लता वगीचे धूपघट तोरणद्वार महल चैत्यालय

कल्पवृक्ष नाट्यशाला और आठ गोपुर आदि यथास्थान रच कर तैयार कर दिये। समवसरणमें वारह सभाओंका भी निर्माण किया गया और उनमें विद्याधर देव मनुष्य उरग किन्नर गंधर्व फणींद्र चक्रवर्ती और यक्ष आदि भी अपने अपने स्थान पर आकर बैठ गये। इसप्रकार जिससमय स्वयंवरस्थल समवसरण बनकर तयार होगया तो उससमय आस्रवोंने कृष्ण नील कापोतलेश्यारूप नाना-प्रकारके वर्णोंसे चित्र विचित्र आशारूपी गुणसे युक्त धनुष यम-राजके घरसे लाकर सहसा देव मनुष्य आदिके सामने रख दिया और उसीसमय कमनीयरूपसे शोभित, स्वच्छस्फटिकके समान कांतिमान शरीरको धारण करनेवाली, रत्नत्रयरूप तीन रेखाओंसे जाज्वल्यमान कंठसे शोभित, चंद्रवदनी और नीलकम-लके समान विशाल रमणीय नेत्रोंको धारण करनेवाली मुक्तिकन्या भी हाथमें तत्त्वरूप वरमालाको लेकर स्वयंवरमंडपमें आ विराजी। जब इंद्रने देखा कि धनुष और कन्या दोनों आगये विवाहका समय समीप है तो वह उठकर खडा होगया और सभाके मनु-ष्योंसे इसप्रकार कहने लगा-

"सुनो भाई शूरवीरो! कन्याके पिता महाराज सिद्धसेनकी आज्ञा है कि जो पुरुष सब लोगोंके सामने इस कर्मधनुषको खंड २ कर डालेगा वही कन्या मुक्तिका पति समझा जायगा-उसीके साथ उसका विवाह होगा। इसलिये जो महाशय मुक्तिके साथ विवाह करनेके इच्छुक हों वे इस धनुषको तोड डालनेका प्रयत्न करें।" ज्योंही इंद्रके मुखसे राजा सिद्धसेनकी यह आज्ञा सुनी सब लोगोंके छक्के छूट गये और मन ही मन यह विचारकर

कि कन्या तो अनुपम सुंदरी है इसके साथ विवाह करना भी ठीक है परंतु कर्म धनुषको कौन तोडे सबके सब अवाक् रहगये-किसीके मुखसे कुछ भी वचन न निकले, सभा भवनमें एकदम सन्नाटा छागया और एक दूसरेका मुख देखने लगे। भगवान जिनेंद्र पूर्ण जितेंद्रिय महामनोहर, समस्त लोकके ईश्वर, सदा शांत मूर्तिके धारक, ज्ञानस्वरूप सर्वज्ञ, दिगंबर, पवित्र शरीरके धारक, संसाररूप समुद्रके पार करनेवाले, अनंत वीर्य गुणके धारक, पंच कल्याणरूप विभूतिसे विभूषित, कुछ सुखोईकोलिये हुये कमलके समान नेत्रोंसे युक्त, पाप मल खेद आदिसे रहित, तपके भंडार, क्षमा और दया गुणके धारण करने वाले, समाधिमें लीन, तीन छत्रोंसे शोभित, भामंडलसे देदीप्यमान, समस्त देवोंके देव, बडे २ मुनियोंसे वंदित, समस्त वेद और शास्त्रोंके पारगामी, निरंजन और अविनाशी थे। जिससमय उन्होंने देखा कि सभामें सन्नाटा छा रहा है-कोई भी राजा सिद्धसेनकी आज्ञाका पालन करना नहिं चाहता तो वे एकदम सिंहासनसे उठ धनुषके सामने आकर खडे होगये। धनुषको हाथमें ले लिया और कान तक चढा देखते २ उसे तोड डाला। ज्योंही धनुष टूटा उसका बडा भयंकर शब्द हुआ उसके दिग्व्यापी नादसे पृथ्वी कंपगई, सागर पर्वत चल विचल हो उठे और स्वर्गमें रहनेवाले ब्रह्मा आदिक देव मूर्च्छित होगये। जब कन्या मुक्तिने देखा कि महाराज अनुपम गुणोंके भंडार हैं मेरे पिताकी आज्ञानुसार इन्होंने धनुष भी तोड डाला है तो वह शीघ्र ही उठी और तत्त्वरूप वरमालाको कुलकर नाभिके पुत्र तीर्थंकर ऋषभ देवके गलेमें डाल कृतकृत्य होगई। बस वरमाला

के पडते ही स्त्रियां मंगल गान गाने लगीं। चारों निकायके देव आकर उपस्थित होगये। सिंह महिष ऊंट अष्टापद द्वीपी बैल मकर वराह व्याघ्र गरुड पक्षी हाथी वक हंस चक्रवाक गैंडा गरुड गवय घोडा और सारस आदि अनेक प्रकारके वाहनोंपर सवार षोडश आभरणोंसे भूषित शरीरके धारक, पवनसे कंपित ध्वजा और आतपत्रोंसे भूषित, अपनी प्रभासे सूर्यकी प्रभाको भी तिरस्कार करनेवाले मुकुटसे जाज्वल्यमान, भांति २ के दिव्य शस्त्रोंसे भूषित, परिवारके मनुष्य और स्त्रियोंसे मंडित, उच्चस्वरसे मनोहर स्तुति और नृत्य गीत करनेवाले, भेरी मृदंग पटह आदि उत्तमोत्तम बाजोंसे समस्त आकाश मंडलको वधिर करनेवाले और परस्पर वाहन विमान हाथ पैर और शरीरके संघर्षणसे टूटे हुये मोतियोंसे समस्त भूमंडलको व्याप्त करनेवाले अन्य अन्य भी अनेक देव 'जय जय' शब्द करते हुये वहां आगये। श्री ह्री कीर्ति सिद्धि निःस्वेदता निर्जरा वृद्धि बुद्धि अशल्यता बोधि समाधि प्रभा शांति निर्मलता प्रणीति अजिता निर्मोहता भावना तुष्टि पुष्टि अमूढदृष्टि सुकला स्वात्मोपलब्धि, निश्शंका अत्यंतमेघा विरति मति धृति क्षांति अनुकंपा इत्यादि देवियां भी जो नानाप्रकारके भुजबंधोंसे शोभित चंद्रवदनी और नानाप्रकारके चित्र विचित्र मोतियोंके बने हुये हारोंसे युक्त वक्षस्थलोंसे मंडित थीं शीघ्र ही भगवान जिनेंद्रके विवाहकी खुशीमें मंगल गान करनेकेलिये आगईं।

भगवान जिनेंद्र अपनी हृदयहारिणी मुक्ति भार्याके साथ मनोरथरूपी विशाल हाथीपर सवार होगये। इंद्र और देवोंने पुष्प

वृष्टि की, दया आदि स्त्रियोंने भगवानको समस्त आभरण पहिनाये, सरस्वती मंगल गान करने लगीं और देवोंने मृदंग भेरी आदिके उन्नत शब्द किये। उससमय केवलज्ञानरूपी देदीप्यमान अविनाशी राज्यके स्वामी जिनेंद्रकी यात्रा समस्त लोकमें अनुपम थी, जिससमय चारों निकायोंके देवोंसे वंदनीक अनेक प्रकारकी पवित्र २ स्त्रियोंके द्वारा गाई गई कीर्तिके भंडार अचिंत्य ज्वलंत दीप्तिसे व्याप्त भामंडलसे विभूषित, बडे २ ऋषि महर्षियोंसे स्तुत, अनेक यक्षोंसे ढोलेगये चमरोंसे वीजित और तीन छत्रोंसे शोभित परमेश्वर ऋषभदेव मोक्षपुरके मार्गसे जाने लगे उससमय संयम श्री और तपश्रीमें इसप्रकार वार्तालाप होने लगा—

संयमश्री—प्यारी सखी तपश्री! क्या नहिं देखती। नानाप्रकारके महोत्सवोंसे भूषित महाराज जिनेंद्र अब कृतकृत्य हो चुके-संसारमें जो कुछ कार्य करने थे सब कर चुके और कोई कार्य अब इन्हैं करनेकेलिये अवशिष्ट नहिं रहा। यद्यपि इन्होंने दुष्ट कामदेवको विध्वस्तकर डाला है परंतु इसबातका भय है इनके मोक्ष चले जानेके बाद वह दुष्ट फिर चारित्रपुरपर धावा न करै और वहांकी प्रजाको संताप न दे इसलिये राजा जिनेंद्रके पास जाकर तू यह सब निवेदन करदे जिससे वे चारित्रपुरका उचित प्रबंध कर जाय-कामदेव फिर आकर चारित्रपुरके निवासियोंको संकट जालमें न डाल सके।

तपश्री—प्यारी सखी संयमश्री! तुमने ठीक कहा। हम लोग भी तो चारित्रपुरके ही रहनेवाले हैं अवश्य दुष्ट कामदेव चारित्रपुरमें आकर उपद्रव करैगा इसमें कोई संदेह नहीं इसलिये

यह निवेदन अवश्य भगवान जिनेंद्रसे करनेके लायक है।" इस प्रकार दोनो सखी परस्पर सम्मति कर शीघ्र ही भगवान जिनेंद्रके सामनें पहुंचीं और उनसे हाथ जोडकर बोलीं—

"पवित्र मूर्तिके धारक! तीन भुवनमें विख्यात कीर्तिसे भूषित! तपनीय सुवर्णके समान मनोहर! राग द्वेष आदि दोषोंको जडसे नष्ट करनेवाले! श्री भगवान! आपके चरणकमलोंमें एक विनय है आप उसे अवश्य सुनें—

भगवन्! आप कृतकृत्य होकर मोक्ष जा रहे हैं अब आपको न किसीसे राग रहा न द्वेष। दुष्ट कामदेव बडा क्रूर है। आपने उसे वश कर डाला है—सिवाय आपके वह किसीसे भय नहिं करता। जब वह यह सुनेगा कि आप चारित्रपुरको छोडकर मोक्ष चले गये तो वह अवश्य चारित्रपुरपर धावा करेगा। हमें अवश्य नाना प्रकारके कष्ट देगा और आपके पीछे हमारी कौन रक्षा करैगा? इसलिये अपने सामने ही सर्वथा हमारी रक्षाका उपाय कर जांय।" तपश्रीके वचन सुन राजा जिनेंद्रने स्वीकार कर लिया और गणधर वृषभसेनको जो समस्त शास्त्रके समुद्र थे। सज्जनोंको आनंद प्रदान करनेवाले चंद्रमा, कामरूप मृगकेलिये सिंह, दोषरूप दैत्यकेलिये इंद्र, समस्त मुनियोंमें जिनेंद्र, कर्मोंको सर्वथा विध्वंस करनेवाले, कुगतिके नाशक, दया और लक्ष्मीके स्थान, संसारके विध्वंस करनेवाले, याचकोंकी आशा पूरण करनेमें कल्पवृक्ष, समस्त गणधरोंके स्वामी और सम्यग्ज्ञानरूपी दीपकके धारक थे शीघ्र ही अपने पास बुलाया और "वृषभसेन! हम तो अब मोक्षपुरको जाते हैं तुम्हैं समस्त गुण महाव्रत दया क्षमा

आदि धारण करने चाहिये और चारित्रपुरमें रहनेवाले समस्त मनुष्योंकी प्रतिपालना करनी चाहिये" ऐसी उन्हें आज्ञा दे तथा समस्त जीवोंको संबोधकर मोक्षपुरकी तरफ रवाना हो वहां पहुंच गये।

इसप्रकार श्रीठक्कुर माइंदेवके पुत्र जिनदेवद्वारा विरचित संस्कृत मकरध्वजपराजयकी भाषावचनिकामें मुक्तिके स्वयंवरका वर्णन करनेवाला पंचम परिच्छेद समाप्त हुआ ॥५॥

मकरध्वजपराजयमें गृहीतशब्दोंका कोष।

अंग—श्रुत ज्ञानका भेद है और वह १ आचारांग २ सूत्रकृतांग, ३ स्थानांग ४ समवायांग ५ व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग ६ ज्ञातृधर्मकथांग ७ उपासकाध्ययनांग ८ अंतकृद्दशांग, ९ अनुत्तरौपपादिक दशांग १० प्रश्न-व्याकरणांग ११ विपाक सूत्रांग और १२ दृष्टिप्रवाद अंगके भेदसे बारह-प्रकारका है। आचार आदि विषयोंका इन अंगोंमें वर्णन है।

अनुप्रेक्षा—बार बार पदार्थोंके स्वरूपका चिंतवन करना अनुप्रेक्षा है और उसके १ अनित्य २ अशरण ३ संसार ४ एकत्व ५ अन्यत्व ६ अशुचित्व ७ आस्रव ८ संवर ९ निर्जरा १० लोक ११ बोधिदुर्लभ और १२ धर्म ये बारह भेद हैं इनमें अनित्यत्व आदि स्वरूपकी भावना कीजाती है।

अंतराय-कर्म विशेष है। दान लाभ भोग आदि सामग्रियोंका इच्छा-नुसार न मिलना अंतराय कर्मका कार्य है और यह १ दानांतराय २ लाभां-तराय ३ भोगांतराय ४ उपभोगांतराय ५ और वीर्यांतरायके भेदसे पांच प्रकारका है।

अवधिज्ञान—अवधिको लिये हुये रूपी पदार्थोंका जनानेवाला अ-वधिज्ञान है और उसके १ अनुगामी (दूसरी गतिमें जानेपर पीछे चलने-वाला) २ अननुगामी [पीछे न चलनेवाला] ३ वर्धमान [बढता हुआ] ४ हीयमान [क्षीण होता हुआ] अवस्थित [निश्चल] ६ अनवस्थित [चलायमान] ये छै भेद हैं।

असंयम—छै कायोंके जीवोंके प्राणोंकी रक्षा न करना असंयम है और १ पृथ्वीकायिक २ जलकायिक ३ तेजः कायिक ४ वायुकायिक ५ वन-स्पतिकायिक और ६ त्रसकायिक ये छै काय हैं।

आचार—आचरणको आचार कहते हैं और उसके १ दर्शनाचार २ ज्ञानाचार ३ चारित्राचार ४ तप आचार ५ और वीर्याचार ये पांच भेद हैं। ज्ञान आदिका आचरण करना इनका अर्थ है।

आयुःकर्म—कर्म विशेष है जिसे गतिमें जिस जीवका जितना आयु रहता है उतने समय तक उसगतिमें उसै अवश्य रहना पडता है यहीं इसका कार्य है १ नरक आयु २ तिर्यंच आयु ३ मनुष्य आयु ४ और देवायुके भेदसे वह चारप्रकारका है। नरक आदिकी जितने कालकी स्थिति वंधी है उतने कालतक जिसके कारण वहां रहना पडे उसे नरक आयु आदि कहते हैं।

आर्जव—धर्म विशेष है। माया छल छिद्र कपटका न करना आर्जव कहा जाता है।

आस्रव—कर्मोंका आना आसूव कहा जाता है यह द्रव्यासूव और भावासूवके भेदसे दो प्रकारका है। मन वचन कायकी क्रियासे द्रव्यकर्म–ज्ञानावरण आदिका आना द्रव्यासूव और रागद्वेष आदि भाव कर्मोंका आना-उत्पन्न होना भावासूव है।

इंद्रिय—जो पदार्थोंके स्पर्श रस आदिके ज्ञानमें कारण हों वे इंद्रिय है औरं स्पर्शन रसना घ्राण चक्षु और श्रोत्रके भेदसे वे पांच प्रकारकी हैं।

उपशम—कषाय आदि दुर्भावोंकी शांतिको उपशम कहते हैं।

कर्म—जीवके स्वाभाविक गुणोंको प्रकट न होनेदेनेवाला कर्म है और वह १ ज्ञानावरण २ दर्शनावरण ३ वेदनीय ४ मोहनीय ५ आयु ६ नाम ७ गोत्र और ८ अंतरायके भेदसे स्थूलतया आठ प्रकारका है जीवके सम्यग्ज्ञान आदि स्वभाव गुणोंको प्रकट न होने देना इनका कार्य है।

कषाय—आत्माको कषनेवाला-उसे शुद्ध स्वभावसे विचलित कर

देनेवाला कषाय है और यह अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ अप्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ। प्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ और संज्वलन क्रोध मान माया लोभके भेदसे सोलह प्रकारका है वज्र आदिकी लकीरके समान गुस्सा मान आदिका होना अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ आदि हैं।

कुकथा—विना प्रयोजनकी वा खराब कथाओंका कहना कुकथा है और उसके राजकथा देशकथा भोजनकथा और स्त्रीकथा ये चार भेद हैं

कुज्ञान—मिथ्याज्ञानको कुज्ञान कहते हैं और कुमतिज्ञान कुश्रुतिज्ञान कुअवधिज्ञानके भेदसे वह तीन प्रकारका है।

केवलज्ञान—मति श्रुत अवधि मनःपर्यय और केवलके भेदसे ज्ञान पांच प्रकारका है। पांचों इंद्रियां और मनसे होनेवाला ज्ञान मतिज्ञान है केवल मनसे होनेवाला श्रुतज्ञान (अवधिज्ञान कह दिया गया) परपुरुषके मनके मूर्तिमान पदार्थको जनानेवाला मनःपर्यय और लोकके मूर्तिमान अमूर्तिमान समस्त पदार्थोंको स्पष्टरूपसे एक साथ जनानेवाला केवलज्ञान है।

क्षमा—[उत्तम क्षमा] धर्म विशेष है और कटुक वचनोंके बोलने पर वा मारण ताडनका कष्ट भी भोगनेपर क्रोधका न आना इसका अर्थ है

क्षायिकसम्यक्त्व—अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ नाम चार चारित्र मोहनीय कर्मके भेदोंके और मिथ्यात्व सम्यक्त्व और सम्यक्मिथ्यात्व नामक तीन दर्शन मोहनीयके भेदोंके सर्वथा नाश होजानेपर जो आत्माका स्वभाव भूत गुण प्रकट होजाता है वह क्षायिक सम्यक्त्व कहा जाता है (जिसके उदयसे जीवके अतत्त्व श्रद्धान हो वह मिथ्यात्व, जिसके उदयसे सम्यक्त्व गुणके घात न होनेपर भी चल मल आदि दोष

उत्पन्न होजाय वह सम्यक्त्व प्रकृति और जिसके उदयसे परिणाम न सम्यक्त्वरूप हों और न मिथ्यात्वरूप हों मिश्रपरिणाम रहैं वह सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति है।

गुप्ति—रक्षण करना गुप्ति कही जाती है और वह मनोगुप्ति (मनका वशमें रखना) वचोगुप्ति [निंदित वचन न बोलकर हित मित वचन बोलना] और कायगुप्ति [शरीरको निंदितकार्योंमें प्रवृत्त न होने देना] के भेदसे तीन प्रकारकी है।

गोत्रकर्म—कर्मविशेष है जिसके उदयसे जीव कभी नीच गोत्र तो कभी ऊंच गोत्रमें जन्म ले वह गोत्र कर्म कहा जाता है और उसके उच्चगोत्र और नीचगोत्र ये दो भेद हैं।

चारित्र—मिथ्यात्व कषाय आदि संसारकी कारण क्रियाओंसे विरक्त रहना चारित्र कहा जाता है और इसके सामायिक छेदोपस्थापना परिहारविशुद्धि सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यात ये पांच भेद हैं।

जिनराज--कर्मोंका जीतनेवाला महापुरुष जिनराज कहा जाता है।

तत्त्व-सत् वस्तुका नाम तत्त्व है और वह जीव अजीव आस्रव बंध संवर निर्जरा और मोक्षके भेदसे सात प्रकारका है।

तप--ज्ञानपूर्वक शरीरको कष्ट देना तप है और वह बारह प्रकारका है उनमें अनशन अवमोदर्य वृत्तिपरिसंख्या रसपरित्याग विविक्तशय्यासन और कायक्लेश ये छै भेद बाह्य तपके हैं और प्रायश्चित विनय वैयावृत्य स्वाध्याय व्युत्सर्ग और ध्यान ये छै भेद अभ्यंतर तपके हैं।

दंड--[अनर्थदंड] विना प्रयोजन कार्योंका करना अनर्थ दंड है और इसके पापोपदेश हिंसादान अपध्यान दुःश्रुति और प्रमादचर्या ये पांच भेद हैं।

दर्शन--पदार्थोंका साक्षात् करानेवाला आत्माका स्वभाव गुण है।

दर्शनावरण--कर्म विशेष है जिसके उदयसे आत्मा पदार्थोंके देखनेमें असमर्थ हो अभीष्ट पदार्थोंको न देखसके वह दर्शनावरण है और इसके चक्षुर्दर्शनावरण अचक्षुर्दर्शनावरण अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण निद्रा, निद्रा निद्रा, प्रचला, प्रचला प्रचला और स्त्यानगृद्धि नव भेद हैं।

दिव्याशिनी-भूख प्यास आदि।

दुर्गति--निंदित गतिको दुर्गति कहते हैं जैसे तिर्यंच गति, नरक गति।

दोष--आत्माको स्वस्वरूपसे पतित करानेवाले दोष कहे जाते हैं और वे १ जन्म २ जरा ३ तृषा ४ क्षुधा ५ आश्चर्य ६ अरति [पीडा) ७ खेद (दुःख) ८ रोग ९ शोक १० मद ११ मोह १२ भय १३ निद्रा १४ चिंता १५ पसीना १६ राग १७ द्वेष १८ मरण इसप्रकार अठारह प्रकारके हैं

धर्म--जो जीवोंको उत्तम सुखमें ले जाकर धरै उसका नाम धर्म है और उसके १ उत्तमक्षमा २ मार्दव ३ आर्जव ४ सत्य ५ शौच ६ संयम ७ तप ८ त्याग ९ आकिंचन्य और १० ब्रह्मचर्य ये भेद हैं

नय—प्रमाणका अंश। किसी एक धर्मको मुख्यकर जनानेवाला नय है और वह १ नैगम २ संग्रह ३ व्यवहार ४ ऋजुसूत्र ५ शब्द ६ समभिरूढ ७ एवं भूतके भेदसे सात प्रकारका है।

नरक...जहांपर जीवोंको तीव्रवेदना होवे जहांपर रहनेवाले जीवोंके परिणाम सदा अशुभरूप रहैं वह नरक है और उसके १ रत्नप्रभा २ शर्कराप्रभा ३ वालुकाप्रभा ४ पंकप्रभा ५ धूमप्रभा ६ तमःप्रभा और ७ महातमप्रभा ये अन्वर्थ नाम हैं तथा इन्हीं नरकोंको १ धम्मा २ वंशा ३ मेघा ४ अंजना ५ अरिष्टा ६ मघवी और ७ माघवी इन सात नामोंसे भी पुकारते हैं।

नरकगति—जिसके कारण जीव नरकमें जा उत्पन्न हों वह नरकगति कही जाती है।

नरकगत्यानुपूर्वी—तिर्यंगत्यानुपूर्वी नरकगत्यानुपूर्वी मनुष्यगत्यानुपूर्वी और देव गत्यानुपूर्वी इसप्रकार आनुपूर्वीके चार भेद हैं। जिससमय मनुष्य व तिर्यंचकी आयु पूर्ण हो और आत्मा शरीरसे पृथक होकर नरक गतिको जाता हो उससमय मार्गमें जिसके उदयसे आत्माके प्रदेश पहिले शरीरके आकारके रहते हैं उसे नरकगत्यानुपूर्वी कहते हैं।

नामकर्म—कर्म विशेष है। जिसप्रकार चित्रकार कभी स्त्रीका चित्र तो कभी पुरुषका चित्र खींचता है उसीप्रकार जिसके उदयसे गति शरीर आदि की रचना हो वह नाम कर्म है। और गति जाति शरीर अंगोपांग आदि इसके तिरानवे ९३ भेद हैं।

निंदितपरिणाम—जो आत्माके परिणाम अशुभ हों वे निंदितपरिणाम कहे जाते हैं।

निर्वेग—स्त्री पुत्र धन धान्य आदिका सर्वथा त्याग करदेना निर्वेग-वैराग्य है।

निष्कांक्षित—इंद्र चक्रवर्ती नारायण आदिके भोगोंकी मनमें जरा भी अभिलाषा न करना निष्कांक्षित है।

निश्शंकित—सर्वज्ञप्रतिपादित तत्त्व ऐसे और इसीप्रकार हैं ऐसा अटल विश्वास रखना निश्शंकित कहा जाता है।

नोकषाय—कषायोंको जो सहायता पहुंचावें वें नोकषाय हैं और उनके १ हास्य २ रति ३ अरति ४ शोक ५ भय ६ जुगुप्सा ७ स्त्रीवेद ८ पुरुषवेद और ९ नपुंसकवेद ये नौ भेद हैं।

परीषह—जिसके उदयसे शरीरको कष्ट हो वह परीषह कही जाती है और उसके १ क्षुधा २ तृषा ३ शीत ४ उष्ण ५ दंशमशक ६ नाग्न्य ७ अरति ८ स्त्री ९ चर्या १० निषद्या ११ शय्या १२ आक्रोश १३ वध १४

याचना १५ अलाभ १६ रोग १७ तृणस्पर्श १८ मल १९ सत्कारपुरस्कार २० प्रज्ञा २१ अज्ञान और २२ अदर्शन ये बाईस भेद हैं।

पूर्व—अंग शब्दमें श्रुतज्ञानके बारह भेद गिना दिये है उनमें बारहवे दृष्टिप्रवाद अंगके भेद चौदह पूर्व हैं और उनके १ उत्पाद २ अग्रायण ३ वीर्यानुप्रवाद ४ अस्तिनास्तिप्रवाद ५ ज्ञानप्रवाद ६ सत्यप्रवाद ७ आत्म-प्रवाद ८ कर्मप्रवाद ९ प्रत्याख्यान १० विद्यानुवाद ११ कल्याणवाद १२ प्राणवाद १३ क्रियाविशाल और १४ त्रिलोकविंदु ये चौदह नाम है।

प्रमाण—जो ज्ञान स्व और अपूर्व पदार्थका निश्चायक हो उसे प्रमाण कहते हैं और उसके मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान और केवल ज्ञान ये पांच भेद हैं।

प्रमाद—संज्वलन और नोकषायके तीव्र उदयसे निरतिचार चारित्र पालनेमें अनुत्साहको तथा स्वरूपकी असावधानताको प्रमाद कहते हैं और उसके चार विकथा (कुकथा देखो) चार कषाय (कषाय देखो) पांच इंद्रिय (इंद्रिय शब्द देखो) निद्रा और स्नेह ये पंद्रह भेद हैं।

प्रायश्चित्त—प्रमादसे लगे हुये दोषोंकी शुद्धि करना प्रयश्चित्त है और इसके १ आलोचना २ प्रतिक्रमण ३ आलोचनाप्रतिक्रमण ४ विवेक ५ व्युत्सर्ग ६ तप ७ छेद ८ परिहार और ९ उपस्थापना ये नो भेद हैं।

मतिज्ञान—ज्ञान शब्दको देखो।

मद—अहंकार करना मद है और वह १ ज्ञानका मद २ पूजाका मद ३ कुलका मद ४ जातिका मद ५ बलका मद ६ ऋद्धिका मद ७ तप-का मद और ८ शरीरका मद इसप्रकार आठ प्रकारका है।

मनःपर्यय ज्ञान—ज्ञान शब्द देखो।

महागुण—जो गुण समस्त कर्मोंके नाश होनेपर हों वे महागुण कहे

जाते हैं और उनके १ सम्यक्त्व २ दर्शन ३ ज्ञान ४ अगुरुलघुत्व ५ अवगाहनत्व ६ सूक्ष्मत्व ७ अनंतवीर्य और अव्याबाधत्व ये आठ भेद हैं।

महाव्रत—हिंसा आदि पांच पापोंका सर्वथा त्याग करदेना महाव्रत कहा जाता है और उसके १ अहिंसा महाव्रत २ सत्य महाव्रत ३ अचौर्य-महाव्रत ४ ब्रह्मचर्य महाव्रत और ५ निष्परिग्रह महाव्रत ये पांच भेद हैं।

मार्दव—धर्म विशेष है मानके अभावको मार्दव कहते हैं।

मिथ्यात्व—तत्त्वोंमें श्रद्धानका न होना मिथ्यात्व है।

मिथ्यादर्शन—वस्तुभूत पदार्थ न दीखकर अन्यथाभूत दीखना मिथ्यादर्शन है।

मूढ़ता—मोहसे कुछका कुछ कर डालना मूढता है और उसके लोक-मूढता देवमूढता और गुरुमूढता ये तीन भेद हैं।

मूलगुण—चारित्रका भेद है और वह अहिंसाव्रत आदि पांचव्रत और मद्य मांस मधुका त्याग इस प्रकार आठ तरहका कामूलगुण कहाजाताहै।

यम—यावजीव स्त्री वस्त्र भूषण आदिका त्याग यम कहा जाता है।

रत्न—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्रको रत्न कहा गया है।

लक्षण—श्रीवत्स आदि एक हजार आठ लक्षण जिनेंद्रमें माने हैं।

लब्धि—लाभको लब्धि कहते हैं और उसके १ क्षयोपशम २ विशुद्धि ३ देशना ४ प्रायोग्य और ५ करण ये पांच भेद हैं।

लेश्या—कषायोंके संबंधसे मन वचन कायकी प्रवृत्तिको लेश्या कहते हैं और उसके १ कृष्ण २ नील ३ कपोत ४ पीत ५ पद्म और ६ शुक्ल ये छ भेद हैं।

बहिरात्मा—जो अपने शरीरको ही आत्मा मानता है वह बहिरात्मा कहा जाता है इसे असली पदार्थका ज्ञान नहीं रहता।

विषय—पांचो इंद्रियोंके योग्य पदार्थोंको विषय कहते हैं और वे १ स्पर्श २ रस ३ गंध ४ वर्ण और ५ शब्द ये पांच है।

वेदनीय—कर्म विशेष है जिसके उदयसे सुख दुःखकी प्राप्ति हो सो वेदनीय है और वह सात वेदनीय और असात वेदनीयके भेदसे दो प्रकारका है।

वैराग्य—निर्वेग देखो।

व्यसन—व्यसनका अर्थ खराव आदत है और वह १ जूआ २ मद्य ३ मांस ४ वेश्या ५ परनारी ६ चोरी और ७ शिकार इसप्रकार सात प्रकारका है।

ब्रह्मचर्य—स्त्री और परस्त्रीका सर्वथा त्याग कर देना ब्रह्मचर्य है।

शंका—सर्वज्ञप्रतिपादित तत्त्वोंमें संदेह करना शंका है।

शल्य—जो शल्य-वाणके समान जीवोंके हृदयमें चुभे वह शल्य है और उसके माया मिथ्या निदान ये तीन भेद हैं।

शील—जो व्रतोंका उपकारी हो वह शील है और उसके १ दिग्व्रत २ देशव्रत ३ अनर्थदंडव्रत ४ सामायिक ५ प्रोषधोपवास ६ उपभोग परिभोगपरिमाणव्रत और ७ अतिथिसंविभाग व्रत ये सात भेद हैं।

श्रुतज्ञान—ज्ञान शब्दको देखो।

संवेग—स्त्री विषयभोग उपभोग आदिसे उदासीन रहना संवेग है।

संयम—छै कायके जीवोंकी रक्षा करना संयम है।

सप्तभंग—प्रश्नके वशसे एक पदार्थमें अविरोधसे विधि प्रतिषेधकी कल्पना करना सप्तभंगी नय हैं और वह जैसे १ कथंचित् घट है २ कथंचित् घट नहीं है ३ कथंचित् घट है और कथंचित् नहि है। ४ कथंचित् घट अवक्तव्य है ५ कथंचित् घट है और अवक्तव्य है ६ कथंचित् घट नहि है और अवक्तव्य है ७ कथंचित घट है नहीं अवक्तव्य है।

समिति—किसी जीवको पीडा न हो इस भावसे यत्नाचारपूर्वक प्रवृत्तिका नाम समिति है और उसके १ ईर्या २ भाषा ३ ऐषणा ४ आदाननिक्षेप और ५ उत्सर्ग ये पांच भेद हैं।

सम्यग्दृष्टि—जिसके सम्यग्दर्शन प्रकट होगया हो पूर्णरूप तत्त्वार्थ श्रद्धान हो उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं।

सिद्धस्वरूप—जिसके समस्त कर्मोंका नाश होगया हो सम्यकदर्शन आदि आत्मिक गुण प्रगट हों उसे सिद्धस्वरूप कहते हैं।

सिद्धसेन—जिसकी सिद्धोंकी सेना हो अर्थात् जहांपर बहुतसे सिद्ध ही सिद्ध विराजते हैं यह अर्थ सिद्धसेन पदका है।

संज्वलन—जिसप्रकार जलके ऊपर की हुई रेखा बहुत थोडे समय तक रहती है उसीप्रकार क्रोध आदि उत्पन्न होकर बहुत थोडे समय रहे उसका नाम संज्वलन है और वह १ क्रोधसंज्वलन २ मानसंज्वलन ३ माया संज्वलन और ४ लोभ संज्वलनके भेदसे चार प्रकारका है।

स्वाध्याय—तप विशेषको स्वाध्याय कहते हैं और उसके १ वाचना २ पृच्छना ३ आम्नाय और ४ धर्मोपदेश ये चार भेद हैं।